सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 45, अंक : 8, नवम्बर 2012

अमृत कण

आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

(चाणक्य सूत्र 17/17)

आहार (खानपान), निद्रा, भय और मैथुन (संतानोत्पादन) – ये चारों बातें पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से मिलती हैं, किंतु मनुष्यों में (पशुओं की अपेक्षा) केवल एक धर्म ही विशेष है, इसलिए धर्महीन मनुष्य को पशु के सदृश कहा गया है।

◆ ◆ ◆

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनुस्मृति 2/12)

वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अनुसार कार्य करना यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण (धर्म का बोधक) कहा गया है।

◆ ◆ ◆

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति 6/92)

धृति, क्षमा, दम (अपने मन को वश में रखना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाह्य और आभ्यान्तर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि), विद्या (आत्मविद्या), सत्य (वाणी और मन की यथार्थता) और अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस धर्म के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।

(मनुस्मृति 8/17)

एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और सब तो शरीर के नाश के साथ ही उसको त्याग कर अन्यत्र चले जाते हैं।

◆ ◆ ◆

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

(मनुस्मृति 8/17)

नष्ट (अरक्षित) हुआ धर्म ही मनुष्य को मार डालता है और वही रक्षित होने पर मनुष्य की रक्षा करता है। इसलिए नष्ट धर्म कहीं हमको न मार डाले एतदर्थ धर्म का नाश नहीं करना चाहिए।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विचरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 नवम्बर 2012 अंक : 8

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।।

कठोपनिषद् 1/2/8

प्रकृतिपर्यन्त जो भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, यह आत्मतत्त्व उनसे भी सूक्ष्म है। यह इतना गहन है कि अब तक इसे यथार्थरूप से समझाने वाले कोई महापुरुष नहीं मिलते, तब तक मनुष्य का इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन है। अल्पज्ञ साधारण ज्ञान वाले मनुष्य यदि इसे बतलाते हैं और उनके अनुसार यदि कोई विविध प्रकार से इसके विचार का अभ्यास करता है, तो उसका आत्मज्ञान कभी सफल नहीं होता, आत्म तत्त्व तनिक-सा भी समझ में नहीं आता। दूसरे से सुने बिना केवल अपने-आप तर्क-वितर्क युक्त विचार करने पर भी यह आत्मतत्त्व समझ में नहीं आ सकता। अतः सुनना आवश्यक है; पर सुनना उनसे है, जो इसे भलीभाँति जानने वाले महापुरुष हैं। तभी [illegible] इस गहन विषय की जानकारी हो सकती है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	5
3.	साधक की दैनिक जीवनचर्या कैसी हो? –जे.पी. शर्मा	9
4.	गीतामृत पदावली	19
5.	योग–आसन – सिद्धासन	22
6.	योग–साधना का क्रम	24
7.	चेतना – पं. राम रतन तिवारी	27
8.	मेरे भोले योगीराज – डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया	31
9.	योग विभूति एवं इच्छा शक्ति	32
10.	वैराग्य – प्रो. ऋषिराम शर्मा	35

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

अविद्या जनित पञ्च क्लेश और उनकी निवृत्ति के उपाय

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्धयोग के पिछले दो अंकों में प्रकाशित होने वाले हमारे दो लेखों में हमने जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप को स्पष्टीकरण के साथ समझाने का प्रयत्न किया है। भेद केवल मात्र इतना है कि जीवात्मा क्लेश कर्म विपाकादि से बद्ध है और ईश्वर अनादिकाल से सदैव मुक्त है। अब इस लेख में केवल मात्र विचारना यह है कि पञ्च क्लेश क्या वस्तु हैं और उनकी निवृत्ति के क्या उपाय हैं जिन उपायों का अवलम्ब लेने से जीवात्मा अपने मन के अन्दर रहने वाले इच्छा, द्वेष प्रयत्न सुख – दुःख एवं अज्ञानादि को छोड़कर सदा सर्वदा के लिए क्लेशों से मुक्त होकर शुद्ध स्वरूप में आ जाये एवं परमात्मा में लयता को प्राप्त कर ले। यह तो बिल्कुल ठीक है कोई भी जीव सांसारिक राग द्वेष आदि झमेलों में पड़ा रहे और मन में सोचता रहे कि मैं शुद्ध हूँ मुक्त हूँ यह उसकी कल्पना और भावना है "अकरणात् करणं श्रेयः" अर्थात् न करने से कुछ न कुछ करते रहने के नियम से तो यह ठीक ही है किन्तु क्लेश निवृत्ति के लिए केवल मात्र सोचना ही काम नहीं देगा प्रत्युत दृढ़तर अभ्यास की बहुत बड़ी आवश्यकता रहेगी। जिसके लिए श्री गुरुदेव की अनुकम्पा को प्राप्त करके ऋषि मुनि लोग हिमालय में रहकर पूरी जिन्दगी अभ्यास परायण बने रहते हैं एवं उनके रास्ते में भी अनेक विघ्न बाधायें आती रहती हैं किन्तु समय आने पर वे लोग अपने पुरुषार्थ में सफल हो जाते हैं। अब इस लेख में अविद्यादिक पंच क्लेशों के स्वरूप को भली प्रकार समझ लेने का प्रयत्न करें और इसके बाद में क्लेश निवृत्ति के साधनों को भी अपने जीवन में घटित करें। ताकि मनुष्य शरीर धारण करने का अनुपम लाभ उठाया जा सके। वस्तुतः तो ईश्वर की अनुकम्पा पूर्वक मनुष्य शरीर मिलता ही इसलिए है कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ पूर्वक क्लेश बन्धनों से मुक्त होकर मुक्ति के साधनों को अपनाये और परम पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष लाभ करके सदा–सर्वदा के लिए क्लेश बन्धनों से मुक्त हो जाये। योग दर्शन के साधनपाद के आरम्भ में अविद्यादि पञ्च क्लेशों का वर्णन इस प्रकार से किया है।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश कहे गये हैं।

व्यासदेव जी का अपने भाष्य में संकेत :–

क्लेशा इति। पञ्च विपर्य्यया इत्यर्थः, ते स्यन्दमाना गुणाधिकारं द्रढयन्ति,

परिणाममवस्थापयन्ति, कार्य्यकारणस्त्रोत उन्नमयन्ति, परस्परानुग्रह तन्त्री भूयकर्मविपाकं चाभिनिर्हरन्ति इति।

ये पञ्च क्लेश का अर्थ पञ्च विपर्य्यय भी कहा गया है यह बढ़ते हुए गुणाधिकार को आगे-आगे बढ़ाते चले जाते है। परिणाम को रोके रहते है। कार्यकारणस्त्रोत को उभारते रहते है। एक दूसरे के साथ मिले हुए होने के कारण कर्म विपाक को धारण करते रहते हैं। अर्थात् ये पञ्च क्लेश ही मनुष्य के बन्धन का प्रमुख कारण है जिनके कारण जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। इन सब क्लेशों में अविद्या प्रधान है क्लेश प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन प्रकार से चार भागों में बंटे रहते हैं उसमें प्रधान अविद्या ही रहती है उसका वर्णन भगवान पतंजलिदेव ने इस प्रकार किया है

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्।

अर्थात् प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार क्लेशों के अन्दर अविद्या प्रधान रहती है प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार क्लेशों का वर्णन व्यास भाष्य में इस प्रकार पढ़िये।

अत्राविद्या क्षेत्रम् — प्रसवभूमि:, उत्तरेषाम् — अस्मिताऽऽदीनां चतुर्विधकल्पितानां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नोदाराणाम्, तत्र का प्रसुप्ति:? चेतसि शक्ति मात्र प्रतिष्ठानां बीजभावोपगम:, तस्य प्रबोध आलम्बने संमुखीभाव: प्रसङ्ख्यानवतो दग्धक्लेशबीजस्य संमुखीभूतेऽप्यालम्बने नासौ पुनरस्ति, दग्धबीजस्य कुत: प्ररोह इति, अत: क्षीणक्लेश: कुशलश्चरमदेह इत्युच्यते, तत्रैव सा दग्धबीजभावा पञ्चमी क्लेशावस्था नान्यत्रेति। सतां क्लेशानां तदा बीजसामर्थ्यं दग्धमिति विषयस्य सम्मुखीभावेऽपि सति न भवत्येषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्ति: दग्धबीजानाम प्ररोहश्च, तनुत्वमुच्यते—प्रतिपक्ष भावनोपहता: क्लेशास्तनवो भवन्ति तथा विच्छि॰ विच्छिद्य तेन तेनात्मना पुन: समुदाचरन्तीति विच्छिन्ना:, कथं? रागकाले क्रोधस्यादर्शनाद्, न हि राग काले क्रोध: समुदा चरति रागश्च क्वचिद् दृश्यमानो न विषयान्तरे नास्ति, नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इत्यन्यासु स्त्रीषु विरक्त इति किन्तु तत्र रागो लब्धवृत्तिरन्यत्र भविष्यद्वृत्तिरिति स हि तदा प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो भवति, विषये यो लब्धवृत्ति स उदार:, सर्वस्य एवैते क्लेश विषयत्वन्नाति क्रामन्ति, कस्तर्हि विच्छिन: प्रसुप्तस्तनुरुदारो वा क्लेश इति उच्यते। सत्यमेवैतत्—किन्तु विशिष्टानामेवैतेषां विच्छिन्नादित्वं यथैव प्रतिपक्षभावनातो निवृत्तस्तथैव स्वव्यञ्जकाञ्जनेनाभिव्यक्तइति सर्व एवामी क्लेशा: अविद्या भेदा:, कस्मात? सर्वेष्वविद्येवाभिप्लवते यदविद्यया वस्त्वाकार्यते तदेवानुशेरते क्लेशा:, विपर्य्यासप्रत्यय काल उपलभ्यन्ते, क्षीयमाणां चाविद्यामनु क्षीयन्त इति!!

● ● ●

योग-विद्या ही सर्वोच्च विद्या

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

'ऋते ज्ञानान्मुक्ति' के नियमानुसार आत्म–ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती है। योग–विद्या ही आत्म–ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। इसे ही अध्यात्म–विद्या या ब्रह्म–विद्या आदि के नाम से पुकारा जाता है। 'अध्यात्म विद्या विद्यानाम्' भगवान श्रीकृष्ण के इन वचनों से इस विद्या की सर्वोच्चता का परिचय मिलता है। उपनिषदों में आया है 'अविद्यया मृत्युम् तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते' अर्थात् अविद्या (कर्म) से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृतत्व की प्राप्ति की जाती है, यहाँ पर भी विद्या से अध्यात्म विद्या का ही ग्रहण होता है। वैसे भी विद्या का दार्शनिक अर्थ होता है ''विद्या सा या विमुक्तये'' विद्या वही है, जो मुक्ति प्रदान करे। इस प्रकार के औपनिषदिक उद्घोषणाओं से बिल्कुल स्पष्ट है कि जीव की मुक्ति की कल्पना आत्म–ज्ञान के बिना व्यर्थ है। उपनिषदों ने यत्र तत्र सर्वत्र योग की महिमा मुक्त–कण्ठ से गाई गई है तथा इसे ही मुक्ति का एकमात्र साधन बताया गया है – 'यस्मिन विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातम् भवति सैषा योग विद्या।' जिस विद्या के जान लेने पर सभी अन्य विद्याओं का स्वयमेव ज्ञान हो जाता है, वह है हमारी योग–विद्या। जीव को ब्रह्मत्व की प्राप्ति योग द्वारा ही सम्भव है। जीव की संज्ञा को त्याग कर ब्रह्मत्व प्रदान करने के कारण ही इसे ब्रह्म–विद्या कहा जाता है। जब तक चिज्जड़ ग्रन्थि का भेदन नहीं हो जाता, तब तक उसकी जीव संज्ञा ही रहती है। इसे ही अज्ञान ग्रन्थि, हृदय–ग्रन्थि व जड़–चेतन ग्रन्थि आदि नामों से जाना जाता है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने बहुत सुन्दर निरूपण किया है –

जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई,
जदपि मृषा छूटत कठिनाई।
तबते जीव भयउ संसारी,
छूटि न ग्रन्थि न होइ सुखारी।।

वस्तुतः देखा जाय तो योग–दर्शन का प्रतिपाद्य विषय अज्ञान–ग्रन्थि विभेदन है। योग–दर्शन के शब्दों में इसे सत्व पुरुषऽन्यता ख्याति कहते हैं अर्थात् प्रकृति और पुरुष का पृथक् – पृथक् ज्ञान होना। प्रकृति और पुरुष को एकात्मता की प्रतीति संयोग के कारण मानी गई है। संयोग के अभाव में इस ग्रंथि का भी नाश होने पर आत्म–ज्ञान होता है। योग–दर्शन में सूत्र आया है –

संयोगाभावो हानं तदृशेः कैवल्यम्।

अर्थात् अज्ञान के नाश हो जाने पर संयोगाभाव हो जाता है, जिससे आत्म–ज्ञान होता है, यही दृष्टा (पुरुष) की कैवल्य मुक्ति है। यह जड़–चेतन की गाँठ ही समस्त क्लेशों और संसृति का कारण है। इसके नाश होने पर ही जन्म–मृत्यु का क्रम नष्ट होता है। इसे हृदय–ग्रन्थि का विभेदन करना ही योगियों का चरम लक्ष्य रहता है। योग–दर्श के साधन–पाद मे –'विवेकख्यातिरविलवा हानोपाय:' कहकर विवेक–ख्याति को इस ग्रन्थि के नाश का उपाय बताया गया है। विप्लव रहित विवेक ख्याति प्राप्त किये योगी की स्थिति का वर्णन उपनिषदों में इस प्रकार आया है –

भिद्यते हृदय ग्रन्थि,

छिद्यदे सर्व संशया:।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,

तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

विवेक ज्ञान प्राप्त किये योगी की हृदयग्रन्थि का भेदन हो जाता है। सर्व संशयों का नाश हो जाता है। सब प्रकार के कर्म व कर्म–विपाक नष्ट हो जाते हैं। विवेक–ख्याति को योगाग्नि भी कहा गया है, कल्मषों का दहन करने वाली है। 'योगाग्निर्दहति क्षिप्रं अशेष पाप पंजरम्।' समस्त पापों का नाश करने वाली यह योगाग्नि नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में भी भगवान ने इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए अपने मुखारविन्द से कहा है –

योग संन्यस्त कर्माणं,

ज्ञानं संछिन्न संशयम्।

आत्मवन्तम् न कर्माणि,

निबध्नन्ति धनञ्जय:।।

जिसने समस्त कर्मों के फल का त्याग कर दिया है, ज्ञान के द्वारा जिसके सब संशय नष्ट हो गये हैं, ऐसे आत्मवान् योगी को कर्म किसी भी प्रकार से नहीं बाँध सकते। जिस प्रकार से बीज को दग्ध कर देने पर उसका पुन: रोपण नहीं होता, उसी प्रकार से योगाग्नि के द्वारा दग्ध हुआ कर्माशय पुन: कर्मफल देने में सक्षम नहीं होता।

योग एक अध्यात्म विज्ञान है। विज्ञान का भी महा विज्ञान है। योगी ही प्रकृति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके उसे अपने अधीन बनाता है। आज का वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान में कितनी ही उन्नति कर ले, परन्तु योग–विज्ञान के सामने वह कुछ भी नहीं है। वैज्ञानिक अपने से एक साधारण फूल भी नहीं बना सकता, जबकि योगी सृष्टि–रचना जैसे असम्भव कार्यों को कर डालता है। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। ऋषि विश्वामित्र ने भी त्रिशंकु के लिए नई सृष्टि की रचना की थी। समाधि व संयम के सिद्ध हो जाने पर योगी का परम अणु से लेकर महत्तत्व पर्यन्त अधिकार हो जाता है – **'परमाणु परम महत्तत्वान्तोऽस्य वशीकार:'** समाधि निष्ठ योगी

का परमाणु लेकर महत्तत्वपर्यन्त वशीकार होता है, यह योग–दर्शन के इस सूत्र से स्पष्ट हो जाता है। अन्यत्र भी योगी की इसी प्रकार की शक्तियों का वर्णन मिलता है –

अचिन्त्य शक्तिमान योगी,
नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि,
स्वेच्छया विजितेन्द्रिय:।।

अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न योगी अपने अनेक रूप धारण कर लेता है, पुन: सब अपनी इच्छा से इन सब रूपों को नष्ट कर देता है। विभूतिपाद में संयम के सिद्ध हो जाने पर जिन–जिन सिद्धियों का वर्णन है, वे सभी अचिन्त्य हैं। संयम के सिद्ध हो जाने पर योगी को अपने चित्त का ज्ञान, परचित्तज्ञान एवं पुरुष ज्ञान (आत्मा का ज्ञान) जैसे अत्यन्त दुर्गम ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। योग–विद्या के द्वारा ही उसे सर्व ज्ञातृत्व जैसी अद्वितीय शक्ति मिल जाती है। समस्त अण्डब्रह्माण्ड के प्राणियों को प्रकृति अपनी इच्छानुसार नचाती है, परन्तु योगी उस पर अपना साम्राज्य करता है। इसी विद्या के आलम्बन से ही दु:ख की आत्यन्तिक तथा ऐकान्तिक निवृत्ति सम्भव है। श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध में भगवान् कपिल अपनी माता देवहूति को योगोपदेश करते हुए समझाते हैं कि–

योग आध्यात्मिक:पुंसाम्,
नि:श्रेयस्याय मतो मे।
अत्यन्त उपरतिर्यत्र,
सुखस्य च दु:खस्य च।।

अर्थात् मनुष्य की मुक्ति के लिए अध्यात्म योग ही उपाय है, जिससे दु:ख का निश्चित रूप से तथा सदा के लिए नाश हो जाता है। गीता में भी भगवान यही बात कह रहे हैं –

तं विद्याद् दु:ख संयोग–
वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो,
योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।।

अर्थात् दु:ख के संयोग का वियोग कराने वाली योग विद्या का धैर्यपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता तो स्वयं योगमयी मूर्ति है, इसके एक–एक पाद में योग ही योग का उपाय केवलमात्र बताया है।

आत्मा का दर्शन ध्यानयोग के द्वारा ही सम्भव है, अन्य किसी साधनों से नहीं –

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा,
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।

ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु,

तं पश्यते निष्कल ध्यायमान:।।

— *मुण्डकोपनिषद्*

आत्मा को आँख से ग्रहण नहीं किया जा सकता, न वर्णन होता है। अन्य इन्द्रियों के द्वारा भी इसका ग्रहण नहीं हो सकता। तप तथा कर्म से भी ग्रहण नहीं होता। प्रज्ञाप्रसाद से जब साधक परिशुद्ध होता है, तब वह ध्यान योगी ध्यान करता हुआ ही उसे देखता है।

इस प्रकार उपनिषदों में स्पष्ट रूप से इस वस्तु का निरूपण है कि योग–विज्ञान के बिना आत्म–साक्षात्कार व ब्रह्म–साक्षात्कार कदापि नहीं होता। अत: हम कह सकते है कि योग–विद्या ही सर्वोच्च है।

● ● ●

लेखक बन्धुओं से –

'सिद्धयोग' में प्रकाशनार्थ लेख भेजने वाले लेखक बन्धुओं से निवेदन है कि लेख कागज के एक ही ओर स्पष्ट और शुद्ध अक्षरों में लिखकर भेजने की कृपा किया करें। पेन्सिल से अथवा हल्की फीकी स्याही से अस्पष्ट अक्षरों में लिखे हुए लेख प्राय: अप्रकाशित ही पड़े रह जाते हैं। यह भी आवश्यक है कि अपने लेखों में जिन संस्कृत ग्रंथों के उद्धरण दें उन उद्धरणों के नीचे ग्रंथ का नाम अध्याय तथा श्लोक संख्या का भी उल्लेख भी कर दें ताकि आवश्यक होने पर मूल ग्रंथों के उद्धरणों से उनका मिलान कर लिया जाय।

–सं. सम्पादक

साधक की दैनिक जीवनचर्या कैसी हो?

डॉ. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

दैनिक जीवन चर्या दिन के ब्रह्ममुहूर्त से आरम्भ होती है। यह आठों पहरों का राजा कहा जाता है। इसे अमृतवेला के नाम से भी जाना जाता है। प्रातःकाल के चार बजे की बेला को ब्रह्ममुहूर्त बोला जाता है।

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः।

स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः सः प्रबोधने।।

सुबह की अमृतवेला में जागने से आरोग्यता, दीर्घजीवन, सौन्दर्य, की प्राप्ति होती है। मानसिक स्वास्थ्य बना रहता है। किसी के द्वारा उचित ही कहा गया है –

हर रात के पिछले पहरे में, इक दौलत लुटती रहती है।

जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।।

ब्रह्मवेला में वातावरण को प्रभावित करने वाली दुष्प्रवृत्तियां सोयी रहती है। इस समय वातावरण पूर्णरूप से शान्त, निर्मल, तथा आनन्दित करने वाला होता है। हर प्राणी अपने को तरोताजा महसूस करता है। ब्रह्ममुहूर्त में जागने से मनुष्य की शारीरिक कान्ति, यश, बुद्धि, दीर्घायु, स्वास्थ्य की वृद्धि तथा विकास होता है –

वर्ण कीर्ति मति लक्ष्मी स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।

ब्राह्मे मुहूर्ते संजाग्रच्छियं वा पंकज यथा।।

अपने सुन्दर स्वास्थ्य की रक्षा के लिए ब्रह्ममुहूर्त में उठें –

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।।

सुबह की वेला के वातावरण में प्रचुर मात्रा में प्राण वायु होने के कारण अधिक से अधिक हवा का सेवन करने से सुन्दर स्वास्थ्य बनता है –

''सौ दवा भोर की एक हवा।।''

वेदों में कहा गया है कि सुबह की वेला में समस्त बुद्धियां जागृत हो जाती हैं। अंग्रेजी में कहा गया है "All intelligences, awake with the morning". आगे कहा गया है 'प्रातः रत्नं प्रातरित्वा दधाति' अर्थात् प्रातः उठने वाला रत्नों को धारण करता है। ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाला जो भी कार्य उस समय करता है वह सफल होता है। विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति बढ़ती है। ध्यानीसाधक का ध्यान प्रगाढ़ होता है।

सूर्योदय से लगभग डेढ़ घण्टे पूर्व का समय ब्रह्ममुहूर्त माना गया है जो साधकों तथा ग्रहस्थ सभी के लिए उपयुक्त होता है। यह समय परम पिता परमात्मा से सम्पर्क साधने उससे बातचीत करने के लिए सर्वोत्तम होता है। इस समय साधकों तथा ग्रहस्थों को शयन से जाग

जाना ही चाहिए। लीलाधारी भगवान श्री कृष्ण जी महाराज भी स्वयं ब्रह्मवेला में जागकर ध्यान लगाया करते थे। यथा –

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्।।

– *श्रीमद्भागवत (10/70/4)*

अर्थात् भगवान श्री कृष्ण ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते तथा हाथ मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूप का ध्यान लगाते थे। उस समय उनका रोम–रोम आनन्दित हो उठता था।

प्रातःकाल में देर तक सोना किसी भी तरह से लाभकारी नहीं है। देर तक सोने से पुण्यों तथा सत्कर्मों का नाश होने लगता है। इसलिए आलस त्याग कर प्रातः शीघ्र उठने का प्रयास करें। उषाकाल में जागकर उस सर्वान्तयामी सर्वशक्तिमान ईश्वर की पूजा, अर्चना, प्रार्थना आदि करके गुणगान करेंगे तो आपके हृदय को बड़े सन्तोष की प्राप्ति होगी। अतः जिन्हें सदाचारी, ब्रह्मचारी, ध्यानी, ज्ञानवान, धैर्यवान, विवेकवान तथा साधक बनना है, वे अपने दृढ संकल्प से ब्रह्ममुहूर्त में जागने का अभ्यास बनाये रखें। उषाकाल में दैवी सम्पदाओं का निःशुल्क वितरण होता है। शारीरिक–मानसिक विकलांगता की अवस्था में मनुष्य को सुबह उठकर खुली हवा में घूमना चाहिए। सुबह टहलने से जीवनी शक्ति बढ़ती है। बुद्धि निर्मल तथा प्रखर होने लगती है। अन्तःकरण शुद्ध होकर विचार शुद्धता प्राप्त होती है।

वर्ण कीर्तिं मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विन्दति।
ब्राह्मे मुहूर्ते संजाग्रच्छ्रियं वा पंकज यथा।।

अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त में जागने पर व्यक्ति को शारीरिक सौन्दर्यता, यश, लक्ष्मी, बुद्धि, दीर्घायु, स्वास्थ्य, आदि की प्राप्ति सहज ही सुलभ हो जाती है।

इसके प्रतिकूल सूर्योदय के उपरान्त तक सोने से मानव उपरोक्त लाभों से वंचित रह जाता है। ऐसे मनुष्य का जीवन दरिद्रता में व्यतीत होता है। यथा –

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।।

अर्थात् गन्देवस्त्र पहनने वाले, दाँत साफ न करने वाले, बहुत खाने वाले, कठोर वचन बोलने वाले, सूर्योदय या सूर्यास्त के समय सोने वाले व्यक्ति को भले ही वह स्वयं श्री मन्नारायण ही क्यों न हो, लक्ष्मी, श्री सम्पद, उन्हें त्याग देती है अर्थात् दरिद्रता आ जाती है।

प्रातः जागने के बाद आगत–अनागत कष्टों को दूर करने, भाग्योदय, सुखद दिन बनाने आदि के लिये अपने इष्टदेव, गुरुदेव आदि का स्मरण, पुण्यश्लोक, महापुरुषों का पावन

नाम स्मरण, पग–पग पर जीवन प्रभावित करने वाले सप्तऋषियों, नवग्रहों का स्मरण, स्तवन पूर्वक किया जाता है। भगवान मनु का निर्देश है –

''ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत।''

साधकों, ग्रहस्थों सभी के लिए आवश्यक है कि जैसे ही निद्रा से जागें, अपने सद्गुरु देव, इष्टदेव या परमपिता भगवान का नाम स्मरण, स्तवन, स्तोत्र अथवा गुरुमंत्र का जप करते हुए अपने नेत्रों को खोलें। श्री सद्गुरु परब्रह्मणेनमः, श्री रामलाल प्रभवे नमः, अथवा श्री रामाय नमः, श्री कृष्णाय नमः या श्री सच्चिदानन्दाय नमः आदि कहते हुए अथवा स्मरण करते हुए उठने से प्रायः दिन बड़े हर्षोल्लास के साथ व्यतीत होता है। मस्तिष्क में एक धनात्मक आवेश सा प्राप्त होता है। मेरे श्री सद्गुरुदेव भगवान अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे कि साधकों को सोते समय अपने गुरु प्रदत्त महामंत्र का जप करते–करते सोना चाहिए तथा जैसे ही निद्रा से आँखें खुले पुनः गुरु महामंत्र का जप करें। ऐसा करने से रात्रि में सोते समय भी गुरु मंत्र चलता ही रहता है। हमारे पूर्वजों ने भी इस प्रकार की मंत्र जप मान्यता दी है। गुरु भाइयों के हितार्थ स्मरण के लिए कुछ श्लोक लिखे जा रहे हैं, कृपया सुबह नित्य स्मरण करने का प्रयास करें–

''गुरु के सुमिरन मात्र से नाशत विघ्न अनन्त।
ता ते सर्वआरंभ में ध्यावत हैं सब सन्त।।''
''कहा कमी जाके गुरु धनी जो जग बैरी होय।
गुरु समरथ सिर पर खड़े मार सके नहीं कोय।।''

प्रभु स्मरण करते–करते धीरे–धीरे बैठने का प्रयत्न करें। दोनों हाथों को चहरे पर फेरें। अपने दाहिने हाथ को खोलें तथा हाथ के आगे के भाग में धन–धन्य की देवी भगवती लक्ष्मी, हाथ के मध्य में बुद्धि विवेक ज्ञान की देवी भगवती सरस्वती तथा हाथ के मूल में चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) देने वाले भगवान गोविन्द की भावना करते हुए कर दर्शन करना चाहिए–

कराग्रे वसते लक्ष्मीः कर मध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते कर दर्शनम्।।

संसार के सभी भले बुरे कार्य हाथों द्वारा ही किये जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की कुंजी हाथों में ही होती है। मानव जीवन की सफलता के लिए तीन चीजें आवश्यक होती हैं– धन, ज्ञान तथा ईश्वर। इनमें से एक के बिना जीवन अधूरा है। धन के बिना जीवन नहीं जिया जा सकता – 'अर्थ बिन सब व्यर्थ।' ज्ञानहीन मनुष्य पशुवत होता है। कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का निर्णय ज्ञान बिना नहीं किया जा सकता। ईश्वर की कृपा के बिना कभी कार्यों में सफलता नहीं मिलती है।

इसके बाद शैया का त्याग करते हुए सबसे पहले दायाँ पैर पृथ्वी पर रखते हुए पृथ्वीमाता का अभिवादन करना चाहिए –

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

अर्थात् हे पृथ्वी माँ, समुद्र ही तेरे वस्त्र हैं, पर्वत तेरे स्तन हैं, श्री विष्णु की आप पत्नि हैं कृपया मेरे पैर रखने के लिए क्षमा करें। मनुष्य का सारा जीवन पृथ्वी पर ही तो व्यतीत होता है। पृथ्वी ही प्राणियों का पोषक आहार अनाजों, फलों, दालों आदि के रूप पैदा करती है। सोना, चाँदी, धातुएँ सब पृथ्वी से ही मिल रहे हैं। इसी कारण पृथ्वी को माता कहकर पुकारा जाता है। पृथ्वी तो हमारी माताओं की माता है।

सभी योग साधकों तथा ग्रहस्थियों को पूजा स्थल में जाकर सर्वप्रथम अपने सद्गुरुओं, इष्टदेवों अथवा देवी देवताओं के दर्शन करने चाहिए –

बन्दउ गुरुपदकंज कृपासिन्धु नर रूप हरि।

महा मोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर।

अर्थात् मनुष्य रूप में साक्षात हरि, जो तीनों तापों – दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों के हरण करने वाले, कृपा के अथाह सागर, ऐसे ज्ञान के दाता सद्गुरुदेव के चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ जिनके कहने मात्र से महामोह और अज्ञानरूपी अन्धकार ऐसे दूर हो जाता है जैसे सूर्योदय होने से रात्रि के अन्धकार का नाश हो जाता है।

तत्पश्चात् अपने माता, पिता, गुरुजी आदि को प्रणाम करना चाहिए तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए –

मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव आदि निर्देशों को ध्यान में रखकर अपनी शुभकामनाओं की पूर्ति के लिए, दीर्घायु के लिए, सर्वत्र विजय के लिए, विद्या, बुद्धि तथा धनधान्य की वृद्धि के लिए बड़े बुजुर्गों को चरण स्पर्श करके आशीर्वाद प्राप्त करने चाहिए। कहा गया है –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेवित:।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

केवल माता, पिता, गुरु ही नहीं, चराचरात्मक अखिल विश्व के प्राणियों उपादानों को प्रणाम करने का निर्देश श्री मद्भागवत में कहा गया है –

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च

ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन्।

सरित् समुद्रांश्च हरे: शरीरं

यत्किन्च भूतं प्रणमेदनन्य:।।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि भगवान श्रीरा- नित्य सुबह जागकर माता, पिता तथा गुरु वशिष्ठ को प्रणाम किया करते थे –

प्रात:काल उठि के रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।

अभिवादन तथा प्रणाम करने के पश्चात् मांगलिक वस्तुओं का दर्शन करना चाहिए।

श्रोत्रियं सुभगां गान्च अग्निमग्निचितं तथा।

प्रातरुत्थाय य: प्रश्येदापदम्य: स विमुच्यते।।

अर्थात् प्रभातवेला में वेदज्ञानी, सौभाग्यवतीस्त्री, गाय, अग्नि तथा याज्ञिक का दर्शन करना सर्वथा उचित होता है। इससे मनुष्य सौभाग्यशाली बनता है तथा सारी विपत्तियों से दूर रहता है।

प्रात: उषा काल में जल पीने से शरीर तथा विशेष रूप से पेट को बड़ा लाभ होता है। जल पीने के बाद मल साफ हो जाता है –

सवितु: समुदयकाले प्रसृती: सलिलस्य पिबेदष्टौ।

रोगजरापरिमुक्तो जीवेद वत्सरशतं साग्रम्।।

अर्थात् सूर्योदय के समय जो व्यक्ति प्रतिदिन आठ अंजलि पानी पीता है। वह सभी रोगों से मुक्त रहता है। बुढ़ापा उसके पास नहीं फटकता है। ऐसा मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है। नाक से जल पीने से अनेकों लाभ मिलते हैं। नेत्र विकार दूर होता है। नेत्र ज्योति बढ़ती है। स्मरण शक्ति बढ़कर हृदय को बल प्राप्त होता है। मलमूत्र रोगों से मुक्ति मिलती है तथा भूख बढ़ जाती है। तांबे के पात्र में रखे पानी में अमृत के समान गुण होते हैं। रात्रि सोते समय तांबे के पात्र में पानी भरकर सिरहाने रखकर सुबह पीने से अनेकों लाभ मिलते हैं।

सदैव उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके शौच करनी चाहिए। पूर्व दिशा की तरफ तो कभी नहीं करनी चाहिए। खुले में शौच करने के लिए हवा का रुख जानकर ही बैठना उचित होता है। कहीं–कहीं उल्लेख मिलता है कि सुबह को उत्तर दिशा तथा शाम को दक्षिण दिशा की तरफ मुँह करके शौच को बैठना चाहिए।

शौच च सुखमासीन:, प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुख:।

शिर: प्रावृत्य कर्णौ च मुक्त कच्छशिखोऽपि वा।।

आयुर्वेद में कहा गया है –

निशायां तु पिबेद दुग्धं निशान्ते शीतलं जलम्।

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं किमन्यद भैषजं नृणाम्।।

अर्थात् रात्रि में सोते समय गुनगुना दूध पीकर सोयें। प्रात: काल तांबे के पात्र में रखे पानी का सेवन करें। भोजन के बाद छाछ, लस्सी, मट्ठा का सेवन करने से मनुष्य को औषधि लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

शौच क्रिया पूर्ण होने पर साफ जल से शौच धोनी चाहिए। गुदा को पाँच बार, लिंग को दो बार, दस बार बाया हाथ तथा दोनों हाथों को सात बार शुद्ध मिट्टी, राख या साबुन से अच्छी तरह धोना चाहिए –

द्वे लिंगे मृत्तिके देये गुदे पंच करे दश।
उभयो: सप्त: दातव्याविटशौचे मृत्तिका: स्मृता:।।

तदुपरान्त करंज, गुलर, बबूल, नीम, कदम्ब जो भी सुलभ हो, अँगुली समान मोटी सात आठ इंच लम्बी दातुन खूब चबाकर ब्रुश समान बनाकर दाँत साफ करें। दाँत साफ करने के बाद जिव्हा भी भली प्रकार साफ करें। मुह में पानी भरकर बार-बार कुल्ले करें तथा नेत्रों को साफ करें। कम से कम सात बार आँखें खोलकर जल से आँखो का प्रक्षालन करें। प्रक्षालन करते समय मुह में पानी भरकर करें। ऐसा करने से नेत्र ज्योति बढ़ने लगती है तथा आँखें शीतल रहती हैं –

भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्य वा।
प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थं शीलोदकेन वा।।

शरीर को सुन्दर स्वस्थ, स्फूर्तियुक्त बनाये रखने में व्यायाम का अधिक महत्व होता है। व्यायाम भी दिनचर्या का अंग ही है। व्यायाम करने से शरीर सुन्दर, सुडौल, पुष्ट हो जाता है जिससे रोग आक्रमण नही कर पाते। खाना शीघ्र पच जाता है। आलस तथा मोटापा दूर बने रहते हैं। आरोग्यता लाने के लिए नियमित व्यायाम की आवश्यकता होती है –

शरीरो पचय: कान्तिर्गात्राणां सुविभक्ता।
दीप्ताग्नि त्वमनावस्यं स्थित्वं लाघवं मृजा।।
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।।

जीवन तत्व साधन करने से साधक के शरीर की सभी व्यायाम करने की आवश्यकतायें लगभग पूरी हो जाती हैं।

व्यायाम की भांति तैलमर्दन (मालिश) का भी दिनचर्या में एक विशिष्ट स्थान है। आयुर्वेद मे मालिश के लिए घी की अपेक्षा तेल की मालिश श्रेष्ठ मानी गयी है –

'घृतादष्टगुणा तैले मर्दने न तु भक्षणे अर्थात् मालिश के लिए तेल में घी की अपेक्षा आठ गुण अधिक होते हैं, खाने से नहीं। मालिश त्वचा सुन्दर, पौष्ट बनाती है। थकावट , आलस तथा बुढ़ापा शीघ्र नही सताते। रोग नहीं सताते। आयु में वृद्धि होती है तथा रात्रि को नींद गहरी आती है। सिर, कान तथा पैरों के तलुवों में विशेष रूप से मालिश करनी चाहिए –

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा।
दृष्टिप्रसादपुष्टयायु: स्वप्नसुत्वकत्वदार्दयकृत्।।

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषण शीलयेत्।।

शरीर को नीरोग बनाये रखेन के लिए वायु की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है। शरीर रोम छिद्रों द्वारा वायु प्राप्त करता है। मालिश के द्वारा रोम छिद्र साफ हो जाते हैं जिससे हवा का आदान–प्रदान शरीर के अन्दर सन्तुलित बना रहता है। अतः शरीर की मालिश तेल के साथ नियमित करनी ही चाहिए। महर्षि चरख ने कहा है–

स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनंच त्वगाश्रितम्।

त्वच्यश्च परमोऽभ्यंगस्तरमात्तं शीलयेन्नरः।।

कानों के नीचे अंगूठे से तेल की धीरे–धीरे मालिश करने से कानों के वातज रोग, ब्याधिरता, आदि रोग, फोड़े फुंसी आदि ठुड्डी की समस्या आदि रोगों के होने का भय नहीं रहता है। सिर की मालिश से शिरो रोग–शीर्षाघात, कम्पवात, सन्त्रास आदि होने का भय कम हो जाता है। पैर के तलुवों की मालिश से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। स्नायु तंत्र मजबूत होता है। शरीर शक्तिशाली बनता है। यथा –

न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः।

नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्।।

मालिश के लिए सरसों या तिल का तेल ही उपयुक्त होता है।

साधक के लिए स्नान का अधिक महत्व है। स्नान के बिना मनुष्य को अपवित्र तथा अधम माना जाता है। शास्त्रों में कहा गया है – 'नित्यं स्नात्वाशुचिः कुर्याददेवर्षिपित्र तर्पणम्। अर्थात् स्नान करके सन्ध्या, तर्पण तथा देव पूजा आदि करनी चाहिए।

स्नान के द्वारा रोम छिद्रों से मल को साफ किया जाता है जिससे शरीर में स्फूर्ति तथा ताजगी आती है। स्नान के लिए पावन नदियों का किनारा उपयुक्त माना जाता है। स्नान करते समय भगवन्नामों का उच्चारण, पुण्यतीर्थों का उच्चारण, मोक्षदायी पुरियों का स्तवन करना शुभ माना जाता है। गंगा का नाम लेने मात्र से मुक्ति मिल जाती है तो गंगा में स्नान करने से जो फल मिलता है उसकी कल्पना करना भी कठिन है। स्नान घर में सादा पानी से तीर्थों की भावना करते हुए कर सकते हैं –

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।

नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा।

आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम।।

क्योंकि –

त्वद्दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानजं फलम्।

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।

अयोध्या मथुरा माया काशी कान्ची ह्यवन्ति का।।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका:।

यह कहना स्मरण मात्र नहीं है, अपितु पुण्य भारत माता का अप्रत्यक्ष साक्षात्कार है। नदियों के अलावा स्नान तालाबों, कुओं आदि में भी करते हैं। स्नान के समय शरीर को खूब रगड़ना चाहिए। सारे शरीर की सफाई पानी से करनी चाहिए। स्नान करने से नींद भी अच्छी आती है। शरीर तथा मन की मलिनता दूर हो जाती है। स्नान के बाद मोटे खादी के कपड़े या तौलिये से सारे शरीर को रगड़कर साफ करना चाहिए। इससे शरीर के रोम कूप पूरी तरह से खुल जाते हैं। शरीर की कार्यक्षमता में बढ़ोत्तरी होती है तथा भूख भी खुलकर लगती है।

स्नान के बाद यज्ञोपवीत एवं गाँठ लगी चोटी से सम्पन्न मनुष्य को पवित्र आसन पर बैठकर नित्य पूजा आदि में संलग्न हो जाना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है –

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।

विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्।।

ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह शिखा रखे तथा यज्ञोपवीत अवश्य पहिने। यज्ञोपवीत के बिना पितृकार्य जैसे तर्पण, मार्जन आदि सफल नहीं माने जाते। देव कार्यों के लिए भी यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक होता है। यथा –

पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवता:।

एवं पवित्र स्थान में कुशा, मृगचर्म या वस्त्रयुक्त आसन बिछाकर बैठ जाय। आसन ज़रा जमीन से ऊँचा हो। सुबह की सन्ध्या–पूजन सूर्योदय से पूर्व तथा शायं की सूर्यास्त के बाद ही सम्पन्न करें तो बहुत अच्छा होता है। कहा गया है –

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।

अधमा सूर्यसहिता प्रात: सन्ध्या त्रिधामता।।

सन्ध्या करना ब्राह्मण का कर्तव्य है। जो ब्राह्मण सन्ध्या पूजन नहीं करते उनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता। जैसा कि कहा गया है –

न तिष्ठति तु य: पूर्वां नापास्ते यश्च पश्चिमाम्।

स शूद्रवद् बहिष्कार्य: सर्वस्माद द्विजकर्मण:।।

संध्या करने से आयु में वृद्धि होती है ऐसा माना जाता है। संध्या के बिना धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण नहीं हो पाते। भगवान मनु ने ऋषियों की दीर्घायु का कारण संध्या को ही माना है – **'ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद दीर्घमायुरवाप्नुयु:।'** अत: ब्राह्मण को प्रतिदिन संध्या करनी चाहिए – **'अहरह: सन्ध्यामुवासीत।'**

संसार का कोई भी कार्य बिना संकल्प किये नहीं हुआ करते। धार्मिक कार्यों के लिए

सदैव संकल्प किया जाता है –

'संकल्पमूल: कामो वै यज्ञा: संकल्पसम्भया:।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजा: स्मृता:।।'

संध्या करते समय, संकल्प, आसनशोधन, आचमन, प्राणायाम, उपार्जित पापक्षयार्थ अपामुपस्पर्दन, मार्जन, अधमर्षण, सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान, गायत्र्यावाहन तथा मंत्रजप किया जाता है।

संध्या करते समय आरंभ में ही मस्तक पर तिलक लगाया जाना चाहिए। तिलक लगाये बिना कोई अनुष्ठान सफल नहीं होता –

स्नानं दानं तपो होमो देवता पितृकर्म च।
तत्सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना।।
ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्यात सन्ध्या च तर्पणम्।।

योग साधक विशेष रूप से शिव अथवा योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी महाराज के मानने वाले होते हैं। क्योंकि इन्हें आदि योगी माना गया है। अत: योग साधक प्राय: चन्दन का तिलक मस्तक पर धारण करते हैं।

हिन्दुस्तान में मुख्यत: तीन सम्प्रदाय – शैव (शिव को मानने वाले), शाक्त अर्थात् शक्ति को मानने वाले तथा वैष्णव अर्थात् भगवान विष्णु को मानने वाले होते हैं। शक्तिमाता के पूजने वाले प्राय कुमकुम का तिलक धारण करते हैं। वैष्णव खड़िया मिट्टी का ऊर्ध्वपुण्ड लगाते हैं। शैवों में मस्तक तथा शरीर पर भस्म भी लगायी जाती है –

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव अभ्यंगोत्सवरात्रिषु:।।

संध्या के बाद श्रद्धानुसार घर में बने भोज्य पदार्थों से अपने इष्ट श्री सद्गुरुदेव, इष्टदेव का पंचोपचार पूजन करके भोग अर्पित करना चाहिए। उसके बाद आचमन करके स्वयं आसन पर बैठे तथा भोजन करे।

भोजन आरम्भ करने से पूर्व सर्वदेवमयी गौमाता, कुत्ता तथ चींटी आदि के लिये पंचग्रास देने चाहिए। अन्न को ब्रह्म कहा गया है। कोई भी जीव इसके बिना जी नहीं सकता। अतिथि का विशेष स्वागत करें तथा उसे भोजन कराना न भूलें। 'अतिथि देवो भव:' कहा जाता है।

पंच प्राणाहुति

भोजन के लिए आसन पर बैठकर सर्वप्रथम पांच प्रकार की आहुति देने का विधान है – 'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहकर जल से आचमन करें।

शरीर में प्रधान रूप से पांच प्रकार के प्राण होते हैं जिन्हें अन्न द्वारा आहुति मुँह में दी

जाती है। ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा तथा ॐ समानाय स्वाहा। अब हाथ धोकर यथाविधि भोजन ग्रहण करें। भोजन धीरे-धीरे चबाकर करना चाहिए। भोजनोपरान्त '**ॐ अमृतापिधानमसिस्वाहा**' कहते हुए आचमन करें तथा मुँह को साफ कर लें।

भोजन कर चुकने के पश्चात् कुछ आराम करें ताकि भोजन शीघ्र पच सके। इस समय आमाशय में युद्धस्तर पर भोजन सामग्री पचाने का कार्य शुरू हो चुका होता है। पाचन प्रक्रिया निर्बाध सुचारुपेण चलती रहे इसीलिए शरीर को विश्राम देने की आवश्यकता होती है। कुछ देर बांयी करवट लेकर लेट जायें। वज्रासन में बैठने से भी पाचन क्रिया शीघ्र होती है। भोजन के बाद सौ कदम इधर-उधर घूम लिया जाय तो अच्छा रहता है। भली प्रकार खाना पच सके इसके लिए समतल जगह पर या पलंग पर सीधे चित्त लेट जायें तथा कम से कम आठ श्वांस ले फिर दाहिनी तरफ करवट ले लें तथा सोलह बार श्वांस लें। अब बांयी तरफ करवट लेकर बत्तीस बार श्वांस लें। ऐसा करने से खाना आसानी से पच जाता है।

जैसे संध्या पूजन सुबह सायं दिन में दो बार किया जाता है उसी प्रकार भोजन भी दिन में दो बार किया जाता है। खाने से पूर्व सुबह तथा सायं को हल्का नाश्ता लेना फल, दूध आदि लेना उत्तम होता है।

दिनचर्या के अतिरिक्त समय साधक स्वाध्याय आदि कार्य करते रहें तथा ग्रहस्थ अपने घर के कार्यों का सम्पादन सुचारु रूप से करें। जल पीने में कंजूसी न करें। दिन में खूब पानी पीवें। जल ही जीवन होता है।

शाम को सोने से लगभग एक से डेढ़ घण्टे पहिले भोजन कर लें। सोते समय दूध पीना स्वास्थ्य वर्धक होता है। सोने से पूर्व कुल्ला अवश्य करें तथा हाथ-पैरों को पानी से धोलें। मौसम के अनुसार तलुवों को सरसों के तेल से मालिश करके सोने से नींद अच्छी आती है तथा सिर में खुश्की तथा सफेदी नहीं होती। सोते समय प्रभु नाम स्मरण, गुरुमंत्रों का जप करना आध्यात्मिक रूप से लाभकारी होता है। ऐसा करने से अपने इष्ट की कृपा वर्षा होती रहती है। मंत्र जपते-जपते नींद आ जाय तथा सुबह जागने पर मंत्र जप करके उठने से मंत्र जप की अवधि निर्बाध चलती रहती है।

उपरोक्त दिनचर्या योग साधकों तथा ग्रहस्थ साधकों सभी के लिए उपयोगी होती है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार इसका अनुपालन करने का प्रयास करें तथा अच्छे साधक बनें।

मेरे पूज्य आराध्य श्री सद्गुरुदेव भगवान के पावन चरण कमलों में बार-बार साष्टांग कोटिशः प्रणाम। सभी गुरु भाइयों को सादर जय गुरुदेव।

• • •

गीतामृत पदावली

लेखक – राम प्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी
प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

अध्याय 16

श्री भगवानुवाच

निर्भय रहना, शुद्धहृदयता, ज्ञान–योग में रखना ध्यान।
इन्द्रिय–दमन, वेद का पढ़ना, यज्ञ, सरलता, तप औ' दान।। 1।।

सत्य, अहिंसा, शांति, अनिंदा, क्रोधाभाव, कर्मफल–त्याग।
दया, मृदुलता, लोभहीनता, लज्जा, चंचलता–परित्याग।। 2।।

तेज, क्षमा, धृति तथा शुद्धता, निरभिमानता द्रोहाभाव।
दैवी सम्पद्–प्राप्त पुरुष के हैं ये लक्षण औ, बर्ताव।। 3।।

दंभ, दर्प, अभिमान, धनंजय! क्रोध, निठुरता औ' अज्ञान।
जन्म–प्राप्त पुरुषों की सम्पद् यही आसुरी है, तू जान।। 4।।

दैवी सम्पद् मोक्ष दिलाती, असुरों की सम्पद् बन्धन।
तुझे प्राप्त है दैवी सम्पद्, शोक न कर, कुन्तीनंदन।। 5।।

अर्जुन! दैवी और आसुरी प्राणी जग में उभय प्रकार।
दैवी अभी बताया, अब सुन असुर–भाव का तू विस्तार।। 6।।

क्या करना, क्या कभी न करना, असुर–भाव में नहीं विचार।
शुद्धि न इसमें पाई जाती, नहीं सत्य औ' श्रेष्ठाचार।। 7।।

आश्रयहीन, बिना ईश्वर का, झूठा जग है – वे कहते।
नर–नारी से जन्म बताते, विषय–भोग में रत रहते।। 8।।

अल्प बुद्धिवाले नष्टात्मा यही बात मन में धरते।
क्रूर कर्म करते अपकारी, और जगत् का क्षय करते।। 9।।

विषयेच्छा जो कभी न घटती दम्भ मान औ मद में लीन।
अज्ञान मोह का आश्रय लेकर, करते हैं वे कर्म मलीन।। 10।।

मरण-काल तक चिन्ताओं में संतत वे डूबे रहते।
विषय-भोग में सदा लीन वे 'यही सभी-कुछ है' कहते।। 11।।

आशा के बंधन में रहते, काम-क्रोध से भरपूर।
वे विषयी धन-संचय करते, सदा न्याय से रहकर दूर।। 12।।

'आज मिला यह, और मिलेगा' - यह ही वे सोचा करते।
'इतना धन है, अधिक मिलेगा' - यह ही सदा कहा करते।। 13।।

'अमुक शत्रु को मारा मैंने, औरों को भी दूंगा मार।
ईश्वर, भोगी, सिद्ध, सुखी मैं, मेरे अन्दर शक्ति अपार।। 14।।

मुझ-सा जग में और न कोई, मैं हूँ धनी बहुत जनवान्।
'यज्ञ करूँगा, मौज करूंगा, दूँगा दान' - यही अज्ञान।। 15।।

इन्हीं कल्पनाओं के, अर्जुन! मोह-जाल से वे घिरते।
विषय-भोग-आसक्त पुरुष वे घोर नरक में हैं गिरते।। 16।।

अपने को सर्वोच्च बताते, अभिमानी धन-मद में लीन।
वे दंभी जन नाम-मात्र के करते यज्ञ विधान-विहीन।। 17।।

अहंकार, बल, दर्प, वासना तथा क्रोध भी उन्हें विशेष।
अपने औ' औरों के तन में, मुझसे वे रखते हैं द्वेष।। 18।।

ऐसे द्वेषी नराधमों को, जो हैं जग में क्रूर कराल।
योनि आसुरी में, हे अर्जुन! पुनः-पुनः देता मैं डाल।।19।।

जन्म-जन्म में मूढ़ पुरुष ये योनि आसुरी में जाते।
मुझे कदापि न पा सकते वे, अंत अधम गति हैं पाते।।20।।

काम, क्रोध औ' लोभ नरक के तीन द्वार हैं, यह तू जान।
ये हैं आत्म-विनाशक, अर्जुन! त्याज्य हमेशा इनको मान।।21।।

रहकर दूर सदा तीनों से, अन्धकार के हैं जो द्वार।
पाते हैं नर उत्तम गति को, पालन करें शुद्धाचार।।22।।

शास्त्रों की विधियों को तजकर जो करते हैं मनमाना।
सिद्धि और सुख कभी न पाते, उत्तम गति फिर क्या पाना।।23।।

बुरे-भले कर्मों में, अर्जुन! सदा शास्त्र को मान प्रमान।
शास्त्र-विहित तू कर्म किया कर पार्थ! जानकर शास्त्र-विधान।।24।।

('श्रीगीतामृत-पदावली' का दैवासुर-संपद्-विभाग-योग नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण)

(क्रमशः)

●●●

अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम्।
संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत्।।

जाग जाने पर जैसे स्वप्नावस्था के कर्म लीन हो जाते हैं, वैसे ही मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा ज्ञान होते ही करोड़ों कल्पों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं।

स्वास्थ्य

योग-आसन

सिद्धासन

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं,
विन्यसेन्मेद्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा।
हनुं सुस्थिरम् स्थाणः संयमितेंद्रियोऽचल दृशा,
पश्येद्‌भ्रुवोरंतरं ह्येतन्मोक्षकपाट भेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।

सिद्धासन

अर्थ – गुदा और लिंग इन्द्रियों के मध्य भाग में जो (योनि) स्थान अर्थात् सीमनी है, उससे बाँये पैर की एड़ी को मिलाकर और दाहिने पैर की एड़ी को उसी स्थान में लिंग नाल के ऊपर जमाकर और हृदय के समीप छाती पर ठोढ़ी को लगाकर सब प्रकार से इन्द्रिय द्वारों को रोककर योगी बिल्कुल निश्चल भाव से अपनी दृष्टि को स्थिर रखकर भ्रकुटी के मध्य भाग को देखता रहता है और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठता है। इसको मोक्षद्वार को खोलने वाला सिद्धासन कहा है।

विधि – मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठ जाओ। अपने बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार के योनि स्थान सीमिनी में रखो और अपने दाहिने पैर की एड़ी को लिंगेंद्रिय के ऊपर रखो और निश्चल भाव से जलधर बन्ध लगाकर भ्रूमध्य को देखते रहो। अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर बैठ कर रखो। ये सिद्धासन करने की सरल विधि है।

समय – यह आसन जहाँ आसन क्लासों में करायें वहाँ प्रथम अभ्यासी को अपने शरीर के बलाबल को देख करके एक मिनट से शुरु करें। श्रेणी में क्रमानुसार आधा–आधा मिनट

प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिए और जहाँ अभ्यास समाधि के लिये किया जाय वहाँ पर पहले थोड़ा 2-2 मिनट से बढ़ा करके घन्टों तक ले जाया जा सकता है। सिद्धासन का अधिक अभ्यास गृहस्थियों को अधिक लाभप्रद नहीं है किन्तु साधारण अभ्यास में कोई हानि नहीं है।

लाभ – इस सिद्धासन के गुण इस प्रकार कहे हैं –

चतुरशीतिपीठेषु सिद्धमेव सदाश्रयेत।

द्वासप्तति सहस्त्राणं नाडीनां मलशोधनम्।

आत्मध्यायी मिताहारी यावद्द्वादशवत्सरम्सदा।

सिद्धासना भ्यासाद्योगी निष्पत्ति माप्नुयात्।।

अर्थात् चौरासी आसनों में से सिद्धासन को मुख्य माना गया है। यह आसन बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों को शुद्ध करता है जो व्यक्ति आत्मध्यान और मिताहारी होकर सदा सिद्धासन का अभ्यास करता है, वह अवश्य ही सिद्धि को पा जाता है। सिद्धासन सभी आसनों के फलों को देने वाला है। इसमें बिना किसी परिश्रम के मूल बन्ध, उड्यान बन्ध और जलन्धर बन्ध तीनों बन्ध स्वाभाविक लग जाते हैं। पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।

नासनं सिद्ध सदृशं न कुंभः केवलोपमः।

न खेचरीसमा मद्रा न नाद सदृशोलयः।।

अर्थात् सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है। केवली कुम्भक के समान कुम्भक नहीं है, खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है और नाद के समान लयता देने वाला कोई साधन नहीं है। अतः मोक्षाभिलाषी साधकों को परमात्मा प्राप्ति के लिए सिद्धासन गृहस्थियों के लिए विशेष उपयोगी नहीं यह बात सर्वसाधारण रूप से तो भ्रम ही है किन्तु इतना अवश्य है कि गृहस्थी तीन-तीन, चार-चार घण्टे नित्य सिद्धासन का अभ्यास करते हैं उनके लिये हो सकता है विशेष लाभदायक न हो क्योंकि योनि स्थान के अन्दर लगाई हुई एड़ी वीर्य वाहिन नाड़ी को संकुचित करती है और इनके साथ-साथ मूलबन्ध लग जाने के कारण अपान का उर्ध्वाकर्षण होता है। ऐसी स्थिति में गृहस्थी लोग स्वस्तीक आसन का अभ्यास कर लें, जिसमें उनको कभी भी कोई हानि की सम्भावना हो ही नहीं स..ती। स्वस्तीक आसन का स्वरूप बहुत ही सरल है और सभी के लिये पूरा-पूरा लाभदायक है।

जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वापादतले उभे।

ऋतुकायः समासीनः स्वास्तिकं तत्प्रचक्षते।।

अर्थात् दोनों जानुओं के बीच दोनों पैरों तलुओं को दबा कर एवं समकाय शिरोग्रीव होकर आनन्दपूर्वक सीधा बैठे। इसी को स्वस्तीक आसन कहते है। इसका फल भी प्रायः सिद्धासन के समान ही है और अभ्यासी व अनाभ्यासी सभी के लिए है।

योग साधना का क्रम

(साधु दर्शन एवं सत्प्रसंग से)

"पं. गोपीनाथ कविराज संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान होने के साथ–साथ अच्छे योगी भी हुए हैं। वे विशुद्धानन्द परमहंस जी के शिष्य थे और वाराणसी में रहते थे। जहाँ भी कोई योगी महापुरुष का नाम सुनते थे वहाँ वह अवश्य जाते और कुछ न कुछ ग्रहण करते रहे। अनेक योगी सिद्ध पुरुषों का सत्संग उन्होंने अपने जीवन में किया। साधु दर्शन एवं सत्प्रसंग नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसके कई भाग हैं उनमें अनेक प्रकार के महात्माओं के उपदेश एवं चरित्रों का वर्णन उन्होंने किया है। उन्ही चरित्रों में महात्मा राम ठाकुर का वर्णन है उन्हें किसी सिद्धयोगी से साधना–प्रक्रिया मिल चुकी थी अपने पत्रों में साधना के क्रमों का वर्णन वे कविराज जी को करते रहे हैं साधकों की हित कामना से उन पत्रों का सार वर्णित है इस लेख में।

– सम्पादक"

प्रथम क्रम

साधना के मार्ग में दृढ़ विश्वास लेकर स्थिर चित्त से साधक को आगे बढ़ना चाहिए। सबसे पहले श्री गुरुमूर्ति को उत्तम स्थान पर स्थापित करें। फिर यथा नियम से भक्ति पूर्वक गन्धपुष्पादि द्वारा नाना प्रकार के उपचार से साध्यानुसार पूजा एवं स्तोत्र आदि पाठ करें। प्राथमिक अवस्था में दैहिक क्लेश, मानसिक चंचलता और विषय चिन्ताओं का आविर्भाव होगा। इससे साधक किसी प्रकार की चिंता न करे या विचलित न हो, क्योंकि नियम रक्षा करना उसका एकमात्र धर्म है।

श्री श्री गुरु पूजा के समापन पर स्थिर होकर उसी मूर्ति के प्रति एक दृष्टि से कुछ देर तक दर्शन और मन ही मन जप करना चाहिए।

सांसारिक कार्य करते समय सर्वदा चैतन्य युक्त होकर श्री गुरु के आश्रय में हूँ, उनकी प्रसन्नता के लिए कर्म कर रहा हूँ, यहाँ तक कि उनके द्वारा ही सभी कर्म निष्पन्न हो रहे हैं, इसी प्रकार की भावना लेकर संसार यात्रा करना ही वास्तविक कर्म है। कर्म करते हुए जप जारी रहे और चरण स्मरण या ध्यान द्वारा चरण स्मरण करना ही पूर्ण अवयव ध्यान प्रशस्त है। इसके बाद मुख मण्डल से प्रारम्भ कर चरण या पद युगल तक ध्यान करना आवश्यक है। इस प्रकार ध्यानाभ्यास कभी बन्द न होने पाये। साधक जिस रूप से दृष्टि में रख सके, उसी प्रकार का ध्यान आवश्यक है या अभ्यास के द्वारा उसे अधीन में रखना चाहिए। कुछ दिनों तक अभ्यास करने के बाद परिपक्वता प्राप्त होती है। इसके बाद द्वितीय स्तर या क्रम स्वाभाविक रूप से प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त कर लेगा।

द्वितीय क्रम

इस अवस्था में श्री गुरुदेव की पूर्णांग रूप–चिन्ता एवं सर्वावस्था में जप–ध्यान करना आवश्यक है। अभ्यास की दृढ़ता के बाद कानों में सौं–सौं शब्द, शंख, घंटा या दूर से आती वंशी–ध्वनि सुनाई देती है। इस समय अश्रु, कम्पन, पुलक आदि के लक्षण शरीर पर होते हैं। इस स्थिति को कोई रोग समझने की गलती नहीं करना चाहिए और न घबड़ाना चाहिए। इन लक्षणों को उत्तम लक्षण समझकर आनन्द प्राप्त करना श्रेष्ठ उपाय है। अबाधित जप ही सिद्ध होने का प्रमाण है। श्री गुरु की मूर्ति मानस पट में स्थायी रूप से रखना चाहिए। इसमें सफलता प्राप्त करने पर मन स्थिर हो जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष होता है। यही है – द्वितीय क्रम या स्तर की परिणति।

तृतीय क्रम

श्री गुरु की पूर्णांग मूर्ति स्मरण–मननपूर्वक जप करते–करते देह, मन, प्राण श्री गुरु को ही समर्पित हो जाता है।

शरीर को श्री गुरु अपनी इच्छा से चलायेंगे या चला रहे हैं एवं भीतर सर्वदा गुरुमूर्ति दर्शन होगा, इससे विषयशक्ति क्रमशः लुप्त हो जायगी। काम–क्रोधादि की प्रबलता घट जायगी, मन शान्त और प्रसन्न होगा, शरीर को आत्मा समझने का भ्रम दूर होगा, सारा अभिमान क्रमशः दूर हो जायेगा। सांसारिक भाव, सभी का प्रधान्य घट जायेगा। श्री श्री गुरु की शक्ति पर श्रद्धा और विश्वास दृढ़रूप में स्थायी होगा। गुरुकृपा प्राप्त करने पर चित्त का शान्त रूप और चिन्मय सत्ता का आविर्भाव अन्तर के अन्त स्थल में प्रकट होगा। सभी इन्द्रियादि, तन्मात्रादि गुरु–शक्ति के प्रभाव से चलते रहेंगे तब अपना कोई रूप कर्तृत्वबोध नहीं रहेगा। फलस्वरूप चित्त में तादात्मबोध स्थितिरूप में भी महास्थिति में स्थान प्राप्त करेगा। तभी गुरु और शिष्य के भीतर अभेद तत्वों का समन्वय या एकात्मबोध जाग्रत होगा। इसके बाद अभेद तत्व या एकात्मबोध के कारण अपना है, प्रत्यक्ष होगा। तब समस्त दायित्वबोध आनन्दपूर्वक सम्पन्न होगा।

इसी समय साधक मुक्त रूप में विचरण करने की शक्ति प्राप्त करेगा, इसी को मोक्षत्व प्राप्त करना कहा जाता है। धर्माधर्म, पाप–पुण्य, सुख–दुःखादि, संस्कारादि उसे किसी भी प्रकार से विचलित नहीं कर पाते। उस समय साधक या शिष्य सभी कर्तव्य या जिम्मेवारी श्री गुरु को समर्पण कर निरपेक्षरूप में जीवन धारण कर सकता है। यह भक्ति संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार की अवस्था–प्राप्ति के लिए या इसे प्राप्त न करने पर, रागानुग भजन असंभव है। इसीलिए श्री चैतन्य चरितामृत में कहा गया है –

'शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुगा प्रकृति।'

इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद शाम्भवी मुद्रा के प्रयोग में अखण्ड नामजप के द्वारा शुद्ध से विशुद्ध होते हैं तब देहाभिमान सम्पूर्ण रूप से नहीं रहता अर्थात् गुणातीत रूप में स्थान

प्राप्त होता है। यह सभी विषय अति गुह्य तत्व है।

इसके बाद अर्थात् परिपक्वता के बाद या शिष्य के देह मन और आत्मा की शुद्धावस्था देखने के बाद श्री गुरु शिष्य के भीतर प्रवेश करने में सक्षम होते है। शुद्धता के प्रभाव से अनेक अलौकिक कार्य करवाते है। अगर इसे अपनी शक्ति या सामर्थ्य समझे तो इस अहंकार के कारण अपना अनिष्ट हो सकता है। अग्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। फलत: इस दिशा में विशेष सावधानी या सतर्कता आवश्यक है।

चतुर्थ क्रम

पूर्व वर्णित गुणातीत अवस्था को पाकर साधक को चतुर्थ क्रम में पहुँचना पड़ेगा। यहाँ भजन एकमात्र गुरुशक्ति द्वारा अनुष्ठित होता है। इस समय में भी जीव का अपना साधन–संस्कार रहता है, दूसरी ओर साधक का चित्त योग्यतानुसार भाव प्रकट करता है। रस इसी भाव का अनुगत है – भावानुयायी रस चित्त को आनन्द प्रदान करता है। परन्तु इष्ट को ही सब कुछ अर्पित हो जाता है। उस समय इस स्तर को या क्रम को परिपक्व अवस्था कहा जाता है। इष्ट तदात्मक हो जाता है। इस समय अखण्ड जप या ध्यान करने पर साधक के चित्त में केवल इष्ट से साक्षात्कार या इष्ट दर्शन होता है। इस अवस्था में साधक केवल कृष्णानुशीलन में रहता है। इस समय अपनी कोई सत्ता नहीं रहती। केवल इष्ट की सत्ता स्फुरित होती है एवं इष्टप्रीति के लिए सभी इन्द्रियाँ कर्मरत रहती हैं। मन, बुद्धि, अहंकार आदि, ज्ञान, कर्म के संस्कारों को छोड़कर सर्वतोभाव से इष्टानुसंधान में लीन हो जाता है। जब तक शरीर रहता है तब तक स्मरण–मनन रहता है, इस प्रकार के भजन दुर्लभ है। यही रागानुगा भक्ति का अन्तिम स्तर है। इसी की तीव्रता को प्रेम कहा गया है। बाहर स्वप्नवत और भीतर अखण्ड दिव्य ज्योति प्रस्फुटित होती है। भक्तिरसामृत सिद्ध, इसमें भाव को साधक इष्ट रूप में स्थित होकर, चिन्मय रस विग्रह या सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है।

● ● ●

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशय:।।

– चाणक्य

धर्माचरण से रहित मनुष्यों को मैं जीवित रहते हुए भी मरे हुए के समान मानता हूं। धर्माचरण करने वाला मर कर भी जीवित रहता है, इसमें कोई शक नहीं क्योंकि उसका नाम और यश अमर रहता है।

चेतना

– पं. राम रतन तिवारी, एडवोकेट, दतिया म.प्र.

1. सर्व व्याप्त चैतन्य का, मैं अविभाजित अंश।
लघुतम से परमाल्त तक, सब में है चिदांश।।

2. सुविधा के अनुपात में, सबहिं चेतना प्राप्त।
शक्ति स्वरूपा चेतना, सदा सर्वदा व्याप्त।।

3. चेतन तो अविभाज्य है, जीव मात्र में व्याप्त।
जैसी होगी पात्रता, तदनुसार हो प्राप्त।।

4. शुद्ध चेतना हो तभी, रहे न कोई विचार।
यदि विचार मन में रहे, बनता वही विकार।।

5. शुद्ध चेतना में कभी, बने कोई संकल्प।
प्रकृति करेगी पूर्ण वह, रहे न कोई विकल्प।।

6. चेतन की अनुभूति में, स्वत: शान्ति हो प्राप्त।
चिदानन्द के भाव में, रहे नहीं संताप।।

7. आत्मा के सम्पर्क से, तन मन चेतन होय।
ज्यों विद्युत सम्पर्क से, यन्त्रों में गति होय।।

8. जब तक तन मन में रहे, जड़ चेतन का मेल।
चित्त वृत्ति तब तक रचे, मनोजनित सब खेल।।

9. ज्ञान, बोध या भावना, अन्य सभी अनुभूति।
चेतन से चैतन्य में चेतन की परतीत।।

10. स्मृतियों का विस्मरण, मन हो जब निष्पन्द।
शुद्ध चेतना मौन में, लहती परमानन्द।।

11. चेतन है आकाशवत, व्यापक और असीम।
मन की कल्पित मान्यता, माने ताहि ससीम।।

12. ज्ञान चेतना में भरा, भ्रमित करे अज्ञान।
ज्ञान स्वयंभू नित्य है, भ्रान्ति बने भटकान।

13. कल्प, वृक्ष सतचेतना जो चाहे बन जाय।
विकारग्रस्त संकीर्ण मन, चिनमय शक्ति गंवाय।।

14. अन्तस के चारों करण, चेतन बिन मृत प्राय।
चेतन के सम्पर्क से, जड़ चिन्मय बन जाय।।

15. चेतन बिन संज्ञान नहिं, ज्ञान बिना नहीं बोध।
बोध बिना अस्तित्व की, रहे असम्भव सोध।।

16. सब प्रकार के बोध का, धारक है चैतन्य।
स्वसंवेद्य है चेतना, नित्य सहज सामान्य।।

17. शुद्ध सत्य चैतन्य जो, है मन को अज्ञात।
प्रकृति के सम्पर्क से जो भासित सो ज्ञात।।

18. जीव मात्र में व्याप्त है, चेतन एकहि भाव।
शुद्ध भाव ज्ञानी लहे, मूर्ख लहे दुर्भाव।।

19. मैं मेरे को भूलकर, मन बुद्धि के पार।
शुद्ध चेतना हो तभी, रहे न कोई विचार।।

20. गहन मौन में जब कभी, बुद्धि रहे निस्पन्द।
सम्भाव्य चेतना में तभी, बोध सच्चिदानन्द।।

21. सम्भाव्य शुद्ध चैतन्य में, मूल सत्य का बोध।
मन बुद्धि नहिं कर सके, पर सत्य की सोध।।

22. अहम् भाव हो शून्यवत्, रहे न जग का बोध।
मन बुद्धि के पार तब, शुद्ध चेतना बोध।।

23. देह प्राण अन्तःकरण, सभी देह के यंत्र।
चेतन के सम्पर्क बिन, निष्क्रिय सारा तंत्र।।

24. विस्तृत हो संसार सब, भूलें सब सम्बन्ध।
भूलें अपने आपको, मिले सच्चिदानन्द।।

25. भाति बिना अस्तित्व का, रहे न कोई महात्व।
भाति चेतनाधीन है, चेतन ही है तत्व।।

26. जब विचार मन में उठे, विषय बने साकार।
चेतन का सम्पर्क पा, बुद्धि करे व्यवहार।।

27. मन बुद्धि द्वारा कभी, आत्म तत्व नहि पाय।
वृति शून्य जब चित हो, केवल चित रह जाय।।

28. शुद्ध चेतना में उदित, सहसा जो संकल्प।
स्वतः फलित हो जायगा, रहे न कोई विकल्प।।

29. जीवन के अनुभव विविध, वर्तित भाव विचार।
विभिन्न चित्र मन में बने, चित् सब का आधार।।

30. जागृत और स्वप्न में, भासित हो संसार।
मनोजनित दोनों जगत, चित है देखनहार।।

31. जनगणमन के मूल में, चैतन्य एक परमात्म।
बिलगाव मात्र आभास है, सत्य सभी एकात्म।।

32. दर्पण सम है चेतना, जो हो सो दर्शाय।
भासित सत को कर रही, करती प्रकृति सहाय।।

33. पूर्ण ज्ञान चैतन्य में, परम लक्ष्य आनन्द।
नित्य प्राप्त है आत्म में, नहि जाने मतिमन्द।।

34. मन साक्षी है जगत का, जग का है चैतन्य।
चैतन्य साक्षी स्वयं का, चित के परे न अन्य।।

35. जागृत स्वप्न सुषुप्ति में, सदा रहे जो संग।
नित्य साक्षी है आत्मा, चिदानन्द सतसंग।।

36. सदा जीव में व्याप्त है, चिदानन्द भगवान।
मन बुद्धि से भ्रमित हो, नहि जाने इन्सान।।

37. सर्व व्याप्त है चेतना, ज्यों अनन्त आकाश।
ज्ञान, भक्ति या ध्यान का, चेतन में आवास।।

38. चेतन के इक बिन्दु में, बना अहम् का वृत।
जीव भाव में हो गई, तब आत्मा आवृत।।

39. शुद्ध चेतना हो सके, केवल स्व में लीन।
सोहम् की अनुभूति हो, जीव बने स्वाधीन।।

40. आत्मबोध के क्षणों में, खो जाता संसार।
शुद्ध चेतना में कभी, रहे न कोई विचार।।

41. शुद्ध चेतना में रहे, सदा सहज आनन्द।
मन की ऊहा पोह में, दुख मतिमन्द।।

42. सर्वव्याप्त चैतन्य में बने अहम् के वृत।
मनोजनित बिलगाव से, हो नहि जीव निवृत।।

43. सत में चित मिश्रित रहे, शाश्वत यह संयोग।
अनुभूत सदा आनन्द में, सच्चिदानन्द योग।।

44. हो सुषुप्ति या मूर्छा, मन हो जाय अचेत।
तन मन बेसुध भले हो, आत्मा सदा सचेत।।
45. सभी दृश्य हैं सृष्टि के, भासित सदा अनेक।
चेतन सत्ता का रहे, भाव मूलतः एक।।
46. चेतन के ही क्षेत्र में, बनते हीन महान।
श्रद्धा युत हो मान्यता, भासित हो सब ज्ञान।।
47. अनन्त चेतना से जुड़े हैं जग के सब जीव।
श्रद्धा के अनुपात में, बनता जीव सजीव।।
48. जीवन की संजीवनी, प्रबल आत्मविश्वास।
तुझमें क्षमतायें सभी, हो मत कभी निरास।।
49. वृत अहम् का ओढ़कर जीव बना अल्पज्ञ।
मुक्त चेतना नित्य है, सर्व व्याप्त सर्वज्ञ।।
50. शुद्ध सत्य के बोध में, मन बनता अवरोध।
सीमा अरु सापेक्षता, बाधित करती बोध।।
51. मानस सबके विलग हैं, सबके पृथक विचार।
चित में ही सब व्याप्त है, जो सबका आधार।।
52. सबका अपना विलग है, त्रिगुणात्मक अनुपात।
तदनुरुप बंध वृति में कर्म करे दिन रात।।
53. उपादान अस्तित्व का, नित्य शुद्ध चैतन्य।
आनन्द चेतना में सदा, जान सके सो धन्य।।
54. चिन्तन तज चिन्मय हुआ, मन बुद्धि निस्पन्द।
चाह मिटी तुष्टी मिली, व्याप्त सच्चिदानन्द।।
55. मन बुद्धि निष्पन्द हो, रहे न कोई विचार।
मैं, मेरे बिसरे तभी, चिदानन्द अभिसार।।
56. आत्म चेतना में कभी, रहे न कोई विचार।
तन मन में आल्हाद हो, भूले सब संसार।।
57. अवगुन्ठन है अहम् का, आच्छादित है आत्म।
अहम् भाव से मुक्त हो, चेतन ही परमात्म।।
58. असीम शक्तिमय चेतना, मानव में भी व्याप्त।
श्रद्धायुत संकल्प से जो चाहे सो प्राप्त।।

59. अनन्त चेतना से जुड़ा, तू है सृजनहार।
दीन हीन बन जी रहा, अपनी शक्ति बिसार।।
60. चिदानन्द परमात्म है, वही जीव का मूल।
मैं, मेरे के चक्र में, स्वरूप गया है भूल।।

• • •

मेरे भोले योगीराज...

– डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

मेरे भोले योगीराज देंगे दर्शन वो आज
करो उनकी जय जयकार,
आओ उनका जन्म दिन मनायें।
वो तो कैलाश-वन में हैं बैठे।
जहाँ गंगा की धारा है बहती,
चंदन की खुशबू चारों ओर,
महके जन-जन के प्राण,
आओ उनका जनम दिन मनायें।
ऊँचा आकाश उनका मन है,
चंदा सूरज उनके नयन हैं।
तारे भक्तों की टेर,
वो तो सकल ब्रह्मांड समाये।
आओ सब आनंद रस में डूब जायें।
सद्‌गुणों के रंग सजाना,
और गीत खुशी के गाना।
छोड़ो राग और द्वेष,
करो प्रभु से ही नेह,
आओ उनका जनम दिन मनायें।
उनसे ही आस लगाना
और कहीं ना झोली फैलाना
उनका वृहद-वरद-हस्त
रहे हम पर सदा
उनके ही बस गुण गाना
उनकी मोहक, मुस्कान
करें जन-जन का कल्याण
वो तो सबसे महान
वो तो सबके पालनहार
आओ सब मिल उनको ही ध्याये
आओ उनका जनम दिन मनायें।।

• • •

योग विभूति एवं इच्छा शक्ति

(प्रस्तुत लेख पं. गोपीनाथ कविराज कृत साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग से लिया गया है। इस छोटे से लेख में कविराज जी एवं योगीराज विशुद्धानन्द परमहंस के सत्संग वार्ता में योगी की योग विभूति एवं इच्छा शक्ति का वर्णन हुआ है। साधकों के लिए ग्राह्य होने के कारण इसे इस अंक में दिया गया है ताकि पाठकगण इससे लाभान्वित हों – सम्पादक)

एक बार मैंने (कविराज जी) बाबा से पूछा था – 'योगियों को अपनी–अपनी शक्ति या योगविभूति बाहर प्रकट करना उचित है या नहीं?'

बाबा ने कहा था – "जो लोग शिक्षार्थी हैं एवं योगराज्य में उन्होंने हाल में ही प्रवेश किया है, उनके लिये योग शक्ति या योगविभूति का प्रदर्शन करना हानिकारक है। इससे आसक्ति या अहंकार में वृद्धि होती है। यहाँ तक कि अति निकटतम व्यक्ति को भी यह बात नहीं कहनी चाहिए, वे लोग योगविभूति की बात जान तक न पायें। जहाँ तक हो सके, यथा सम्भव योगविभूति या योग सम्पत्ति गुप्त रखना श्रेयस्कर है। जो लोग सिद्धयोगी, अधिकारी या सामर्थ्य और महाकृपा प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिये नियम नहीं है। क्योंकि उनमें अहंकार नहीं होता और न अहंकार होने की सम्भावना रहती है। अपने लिये उस शक्ति की आवश्यकता सभी को नहीं होती। वह इसलिए कि वे महाकरुणा प्राप्त कर सभी पर विजयी हो चुके हैं और तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। प्रथम प्रविष्ट तथा जिज्ञासु के लिए प्रदर्शन और अभ्यास आवश्यक होता है। दिखावा करने या इसकी क्रमधारा वस्तु के रहस्य को समझाने के अलावा इसके कठिन तत्व में प्रवेश करना कठिन कार्य है। प्रथम प्रवेशार्थियों के लिए दृढ़ विश्वास स्थापना के निमित्त कुछ दिखाना आवश्यक होता है। पहले पहल जिसे असम्भव समझा जाता है, वही आगे चलकर दुरूह या असम्भव प्रतीत नहीं होता। सिद्धयोगी के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। शक्ति के अधीन सब कुछ है। इसलिए शक्ति पर अधिकार रहने पर सब कुछ हो सकता है। जो अधर प्रतीत होता है, वह भी धरना के रूप में महाशक्ति के अधीन है। महाशक्ति के द्वारा ही सब चलायमान होते हैं। योग–मार्ग में उत्कर्षता प्राप्त करने के लिए शक्ति और सरल विश्वास में किसकी विशेष आवश्यकता होती है? योग–मार्ग में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की मीमांसा हुई है। पहली स्थिति में चित्त चंचल रहता है, इसलिए निष्ठा–विश्वास कैसे आ सकते हैं? प्रत्यक्ष दर्शन एक बार नहीं, बार–बार विभिन्न अवस्था में अनुभव करने को मनुष्य का मन होता है। ऊपर के स्तर में विश्वास ही प्रधानवस्तु है। प्रथम अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान का होना आवश्यक है जिससे विश्वास का अविर्भाव हो सके।"

मैंने पूछा – "योग मार्ग में, विभूतियों में भीतर कौन–सा श्रेष्ठ होता है ?"

उन्होंने कहा – ''इच्छा, ज्ञान और क्रिया यही तीनों श्रेष्ठ हैं। इनमें इच्छाशक्ति सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर चुकी है।

ज्ञानशक्ति प्राप्त होने के बाद अशेष और विशेष ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है – इसमें सन्देह नहीं। क्रियाशक्ति के प्रभाव से सभी प्रकार के कर्तव्य किये जा सकते हैं।''

आगे आपने कहा – ''मेरी इच्छाशक्ति के प्रभाव से ही ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कार्य करती है। इच्छाशक्ति प्राप्त होने के बाद, प्राकृतिक उपादानों को लेकर, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कर्म कर सकती है। यही है –विज्ञान। विज्ञान के अनेक भेद हैं। – सूर्य विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, समय विज्ञान आदि। पर इच्छा शक्ति विज्ञान नहीं है।''

मैंने कहा – ''बाबा इच्छाशक्ति और इच्छा के भीतर कोई प्रभेद है ?''

बाबा ने कहा – ''अवश्य, अज्ञानावस्था में इच्छा रह–रह जाती है और पूर्ण ज्ञान होने पर यही इच्छा तब–तब इच्छाशक्ति के रूप में कार्य करने लगती है।''

मैंने पूछा – 'तब तो इच्छा स्वाभाविक शक्ति नहीं है?'

बाबा ने कहा – 'शक्ति का अर्थ है – 'चैतन्य'। जब तक आत्मा अचेतन है या ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, इच्छा इच्छा–मात्र रहती है, तब तक उसे इच्छाशक्ति नहीं कहा जा सकता। ज्ञानप्राप्ति का अर्थ है – आत्म–स्वरूप या ब्रह्मस्वरूप के साथ साक्षात्कार।''

मैंने पूछा – 'इस तरह के साक्षात्कार के बाद भी क्या इच्छा रह जाती है?

बाबा ने कहा – 'अवश्य! इच्छा रह जाती है, पर महाइच्छा के रूप में। अगर इस तरह न हो, तो परमेश्वर का ईश्वरतत्व कैसे सम्भव हो सकता है?'

मैंने कहा – 'शास्त्रों में है – इच्छामात्र प्रभो: सृष्टि: (माण्डूकोपनिषद् गौड़पाद कारिका), इससे यही समझ में आता है।' बाबा ने कहा – 'देखो, इच्छाशक्ति के सम्बन्ध में तुम्हें दो खेल दिखा रहा हूँ। तुम लोग मुट्ठी बन्द करके अपनी ईप्सित वस्तु की चिन्ता करो। वह वस्तु अपने आप आ जायेगी।' उस समय मेरे दो अन्य गुरुभाई वहाँ बैठे थे हम लोगों ने मुट्ठी बन्द करके बाबा के निर्देशानुसार वस्तु की इच्छा मन–ही–मन की। बाबा ने कहा – 'अब देखो, तुम लोगों को अपनी ईप्सित सामग्री मिली या नहीं?' हम लोगों ने मुट्ठियाँ खोलीं। वह खाली थीं। अब बाबा ने कहा – 'एक बार और मुट्ठी बन्द करो। इस बार भी पूर्व वाली वस्तु की चिन्ता करते रहो। पहली बार तुम लोगों ने देखा कि इच्छा के माध्यम से कुछ नहीं हुआ। अब मैं शक्ति संचार कर रहा हूँ।''

आसन पर बैठे बाबा बार–बार हाथ पटकते हुए बोले – 'तुम लोगों की इच्छा में इच्छाशक्ति का संचार कर रहा हूँ।''

इसके बाद हम लोगों ने मुट्ठियाँ खोलकर देखीं, तो ईप्सित सामग्री थी। इस घटना की व्याख्या करते हुए बाबा ने कहा – 'तुम लोगों की इच्छा और मेरी शक्ति मिलकर दोनों ने स्वरूप

वस्तु प्राप्त की है। यही है – इच्छा शक्ति का फल। जब तुम लोगों में महाज्ञान उत्पन्न हो जायगा, तब शक्ति संचार का कोई प्रश्न नहीं रहेगा और न शक्ति–संचार की आवश्यकता होगी।'

मैंने पूछा – 'क्या इच्छाशक्ति ही चरमशक्ति है? क्या इसकी प्राप्ति के बाद योगियों को ईश्वर मिल जाते हैं या चरम सिद्ध बन जाते हैं?'

बाबा ने कहा – 'नहीं। बहिर्मुखी शक्ति के भीतर इच्छाशक्ति प्रधान है। सृष्टि राज्य की दृष्टि में इसी को सर्वप्रधान माना गया है पर इसे प्राप्त करना चरम नहीं है। अन्त में इस इच्छाशक्ति को भगवान के चरणों में योगी अर्पित कर देता है। इस इच्छाशक्ति को आन्तरिक भाव से श्री गुरु–चरण पर समर्पण करने के बाद आह्लादिनी शक्ति यानी परमानन्द शक्ति उदय होता है। जब तक इच्छा की निवृत्ति नहीं होती, तब तक आनन्द का उदय कैसे हो सकता है? इच्छाशक्ति की निवृत्ति के बाद योगियों के हृदय में महाशक्ति का आविर्भाव होता है और तब शरीर में पूर्णानन्द प्रवेश कर पाता है। इसके व्यतिक्रम होने पर क्रमशः ह्रास–वृद्धि में कमी होती है पर चैतन्यसत्ता गायब नहीं होती। शिव–शक्ति पुनर्मिलन से नाद की सृष्टि होती है और अभेद ज्ञान भूमि प्राप्त होने पर योगी को स्वातंत्र्य भूमि प्राप्त होती है, यही है 'पूर्णता'।'

अन्त में आपने कहा – ''विभूतियाँ तुच्छ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर विभूतियों का विकास और संचार का होना आवश्यक है। पूर्ण विकास के बाद उसकी निवृत्ति आवश्यक है।''

● ● ●

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

अर्थात् हे अर्जुन मेरे जन्म और कर्म दिव्य निर्मल अर्थात् अलौकिक हैं वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता। किन्तु मुझे प्राप्त होता है। अतः हमारे प्यारे गुरुदेव की मानवीय भूमिका में उतरने का उद्देश्य- दिव्य सामर्थ्य लेकर, दिव्य ज्योति के साथ, दिव्य प्रयोजन से, दिव्य कार्यों को पहचानना तो दूर रहा उनके आगमन का हेतु जानना भी अति दुर्लभ है।

भक्तियोग

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

योगसाधना में भक्तियोग का विशेष महत्व है। परमार्थतः परमात्मा निर्गुण, निराकार, निराधार, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द स्वरूप है। देववाणी इस सत्य की पुष्टि करती है कि –

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते हि अर्थरूपेण पुरुषैः भ्रान्तदृष्टिभिः।।

अर्थात् सभी प्राणियों में परमात्मा सर्वसाक्षी, निष्क्रिय, निर्गुण, सर्वाधार तथा चैतन्यात्मा के रूप में स्थित है, किन्तु माया के द्वारा उस पर आरोपित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विषय तथा चित्तवृत्तियों के रूप में ही अविद्यामोहित जीवों को दिखाई देता है। यही उसकी त्रिगुणात्मिका माया है। ठीक वैसे ही जैसे अबोध बच्चों को पर्दे पर प्रकाश पर आरोपित फिल्म–संसार दिखाई देता है। अतः मायारचित संसार में मायामोहित जीव की मायिक बन्धन से मुक्ति अत्यन्त कठिन असम्भव सी है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं स्वीकार किया है कि –

अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

अर्थात् अज्ञानी जीव ही परमात्मा को साकार समझते हैं, क्योंकि उन्हें परमात्मा के सर्वनियन्ता तथा सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान नहीं है। अज्ञानी जीव परमात्मा की त्रिगुणात्मिका माया के स्वरूप को भी नहीं समझ सकते और न मायिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। माया से मुक्ति पाने के लिए तो मायापी परमेश्वर की शरणागति परमावश्यक है। शरणागति के लिए परमात्मा ने भक्तियोग का विधान किया है, किन्तु भक्तियोग की ब्रह्मधारा केवल सद्गुरु के चरणारविन्दों से प्रवाहित होती है, अतः ईश्वरभक्ति तथा गुरुभक्ति के रहस्यों को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि गुरुतत्व तथा परमात्मतत्व भिन्न हैं या अभिन्न। भिन्नता द्वैतभाव का प्रतीक है और द्वैतभाव मायाकृत है और माया भ्रान्तिमूलक अविद्या है, नाम तथा रूप यानि सूक्ष्म तथा स्थूल सभी पदार्थ एवं भाव गुणात्मक हैं और गुणों के क्रमपरिणामों का कार्यरूप हैं। इस विषय में वेद का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।

यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेगच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपादिविमुक्तः परम पुरुष उपैति दिव्यम्।।

अर्थात् जिस प्रकार स्वप्न में हमारा चित्त ही परमात्मा की गुणमयी माया के द्वारा आकाश, सूर्यादि सहित स्वप्न के संसार की रचना कर देता है, पदार्थों की ग्राह्यता तथा ग्राहकता को निद्रा के अविद्याजनित आवरण में सत्य भासित करा देता है, ठीक उसी प्रकार हमारा चित्त ही जागृत संसार का व्यवहार कराता है। नाम तथा रूप की भ्रान्तिरूप अविद्या ही उसे सत्य भासित कराती है। इसीलिए जिस प्रकार नदियाँ रास्तों के अनेकानेक कष्ट झेलती हुई बहती चली जाती हैं और अन्त में अपना नाम तथा रूप से मुक्ति पाकर समुद्र में मिल जाती हैं तब शान्ति प्राप्त करती है उसी प्रकार आत्मज्ञ विद्वान नामरूप की अविद्यारूपी माया से मुक्त होने पर परमात्मभाव रूप समुद्र में मिलकर अक्षय सुख तथा शान्ति को प्राप्त करता है। भगवान श्रीकृष्ण इसी सत्य को स्पष्ट करते हैं कि –

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय च कल्पते।।

अर्थात् सिद्धयोगी हो जाने के बाद अविद्या तथा अस्मिता रूपी गुणविकारों से मुक्ति पाकर अपने आत्मस्वरूप को अन्तःकरण से भिन्न सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप में देख लेता है यानि विशुद्ध बुद्धि में अनुभव करता है, तब उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि सृष्टि के समस्त सूक्ष्म तथा स्थूल पदार्थों का कर्ता केवल माया के गुण हैं और वह अपने को गुणातीत स्थिति में पाकर परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है और तभी वह सर्वाधार तथा सर्वव्यापक परम... के साथ एकत्व प्राप्त कर उसी स्वरूप में अभिन्न होकर रमण करता है। अतः सिद्धयोगी, सद्गुरु तथा परमात्मा एक ही आत्मतत्व के प्रतीक हैं। किसी एक स्वरूप की भक्ति स्वतः दोनों स्वरूप की भक्ति होती है। द्वैतभाव मिथ्या है, केवल शब्दों का व्यभिचार है। हमारे त्रिकालसत्य वेदशास्त्र भी यही आदेश देते हैं कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।
यं यं लोकं मनसा सम्विभाति।

कामयति यांश्च कामान्।।
तं तं लोकं जयति तांश्च कामान्।
तस्मात् आत्मज्ञं अर्चयेत् भूतिकाम:।।
स: वेद एतत् परमं ब्रह्म धाम।
यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्।
उपासते पुरुषं ये हि अकामा:।
ते शुक्रं एतत् अतिवर्तन्ति धीरा:।।

(मुण्डक उ. 3/21)

अर्थात् मोक्ष के जिज्ञासु को उस पूर्णआनन्द स्वरूप तथा ज्ञान तथा विज्ञान की प्रतिमूर्तिस्वरूप सद्गुरुदेव की अनन्य एवं अव्यभिचारिणि भक्ति करनी चाहिए जो उस परमात्मा का ही सगुणस्वरूप है जिसकी शक्ति पाकर सभी प्राणी अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा जिसकी मायाशक्ति से प्रकट हुआ जगत समस्त चित्तों में दैदिप्यमान है। वह आत्मज्ञ महापुरुष मन से जिस-जिस लोक का संकल्प करता है अथवा जिस-जिस कामना का संकल्प करता है, वह इच्छामात्र से उस लोक को प्राप्त कर लेता है और उसकी सभी कामनायें संकल्पमात्र से पूर्ण होती हैं। अत: जिज्ञासुओं को उसी की अर्चना करनी चाहिए, क्योंकि जो भक्त उस ब्रह्मज्ञाता पुरुष की निष्कामभाव से पूजा तथा अर्चना करते हैं वह माया के बन्धनों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। संसार के मनुष्यों का कल्याण करने के लिए ही परमात्मा स्वयं देहधारी सद्गुरुदेव के रूप में पृथ्वी पर विचरण करते हैं। जिज्ञासुओं के लिए यही परम सत्य है। भक्ति योग का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश:।।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता: उपासते।
श्रद्धया परयोपेता: ते मे युक्ततमा: मता:।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परा:।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त: उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नाचिरात पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।
मयि मन: आधस्वे मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय:।।

अर्थात् जो जीव जिस-जिस भावना से मेरी भक्ति करता है, मैं भी अपने सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान मन से उसकी भक्ति करता हूँ यानि उसकी भावना को पुष्ट तथा पूर्ण करता

जाता हूँ। इसी उपाय से जीव मेरे मार्ग पर अग्रसर होकर मेरे निकट आते जाते हैं। जो भक्त अपने मन को नित्य अनन्यभाव से मेरे परमात्मस्वरूप के चिन्तन तथा ध्यान में लगाते हैं तथा निष्कपट प्रेम से परिपूर्ण होकर चित्त को मेरे स्वरूप में लय तथा समाहित करते जाते हैं, वही भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। शरीरधारी होने के नाते कर्म तो करना ही पड़ता है किन्तु जो कर्मफल को मेरे समर्पण करते हुए मेरी प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य मानकर अनन्ययोग यानि अव्यभिचारिणी प्रेमभक्ति से परमात्मा की उपासना करते हैं, उन भक्तों को इस माया के भवसागर से पार करने के लिए मैं परमात्मा शीघ्र ही उनके चित्त में प्रकट होकर अपने ज्योतिमय स्वरूप की ज्ञानज्योति दे देते हैं। जब साधक अनन्यभाव से भक्ति करता है तब हृदय में गुप्त गुणातीत परमात्मा को भी प्रकट होना पड़ता है। इसके दो प्रमुख रहस्य हैं जोकि स्वयं परमात्मा के मुख से प्रकट हो गये हैं। प्रथम रहस्य है –

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं हि एतदुत्तमम्।।

तथा द्वितीय रहस्य है कि –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न च प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या ते मयि तेषु चाप्यहम्।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सः योगी मयि वर्तते।।

(गीता)

अर्थात् जब पूर्ण वैराग्य से सम्पन्न होकर लोक तथा धर्म के पापपुण्यात्मक सभी व्यवहारों का चिन्तन त्यागकर जब भक्त एकमात्र परमात्मा से रिश्ता बनाकर स्वरूपशून्यता में अपनी बुद्धि को परमात्मा के विज्ञानमय स्वरूप में प्रवेश करा देता है तब अहंभाव के लुप्त होने से परमात्मा में एकात्मता आ जाती है। इस प्रकार स्वतः ही परमात्मा की ज्ञानज्योति अन्तःकरण को प्रकाशित कर देती है। अन्यथा परमात्मा का न किसी से द्वेष है और न प्रेम है, वह तो सभी प्राणियों में समभाव में स्थित है। इसका कारण भी वेदों में स्पष्ट है कि –

न तस्यं कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।

(श्वेता. उप. 6/8)

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम् यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

(श्वेता. उप. 3/7)

अर्थात् परमात्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे यानि उत्कृष्ट तथा सृष्टिकर्ता कार्यब्रह्म से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि यह दोनों शक्तियाँ उसके सर्वव्यापी स्वरूप से प्रकट हुई हैं। किन्तु उसका न

कोई कार्य है और न कर्तव्य है, न कोई उसके समान है और न उससे अधिकतर तथापि वह प्रत्येक प्राणी में उसके शरीर के अनुकूल स्वरूप में विद्यमान है, समस्त विश्व का एकमात्र भरण–पोषण तथा धारण करने वाला है, क्योंकि उसके सच्चिदानन्द स्वरूप में ज्ञान, शक्ति तथा व्यापकता स्वभाविकी क्षमता है। अत: उसके इस आश्चर्यमय स्वरूप को जानकर जीव कृतकृत्य होकर अमृतत्व पा जाते हैं किन्तु अनादिकाल से मायानिद्रा में सुप्त जीव के चित्त में ऐसी अनन्या भक्ति का उदय एक दुर्लभ प्राप्ति है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

जन्मान्तरसहस्त्रेषु तपोज्ञानसमाधिभि:।
जनानां क्षीणपापानां कृष्णे भक्ति: प्रजायते।।

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों में निरन्तर कठोर तप, वेदान्तविज्ञान का स्वाध्याय तथा योग समाधियों का अभ्यास करते–करते जब अन्त:करण में संचित पापकर्म क्षीण हो जाते हैं तभी शुद्ध अन्त:करण में परमात्मज्ञान की जिज्ञासा तथा भक्ति का उदय होता है। इस भक्ति के उदय होने में कर्मयोग का तथा क्रियायोग का विशेष योगदान है। इसके दो विशेष कारण भी हैं। प्रथम कारण तो यह कि जिस माया ने जीवों की उत्पत्ति की है वह माया परमात्मा से प्रकट हुई है अत: इस संसार का अस्तित्व परमात्मा पर निर्भर करता है, इसलिए जीवन का उद्देश्य अपने कर्मों से उसकी प्रसन्नता ही होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने इस ओर संकेत भी किया है कि –

पुरुष: स: पर: पार्थ भक्तया लभ्य: तु अनन्यया।
यस्यान्तस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

(गीता 8/22)

यत: प्रवृत्ति भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।।

(गीता 18/46)

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:।।

(गीता 8/14)

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुष:।।

(गीता 3/19)

अर्थात् संसार के समस्त प्राणी जिसके सर्वव्यापक स्वरूप में स्थित हैं तथा जिसके चैतन्यस्वरूप से यह संसार प्रकट हुआ है, वह परम पुरुष परमात्मा केवल अनन्यभक्ति से जाना

जा सकता है। जिसके दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप से समस्त चराचर जगत की उत्पत्ति हुई उसी की अपने निष्काम कर्मों से अर्चना करके आध्यात्मिक सिद्धि सम्भव है, अन्य कोई उपाय नहीं। अत: नित्य निरन्तर अनन्य भाव से जो मनुष्य उस परमात्मा का समाहित चित्त से स्मरण करते हैं, वही युक्त योगी परमात्मभाव को प्राप्त करते है। अतएव आत्मसाक्षात्कार के लिए कर्मयोग की साधना अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग से तात्पर्य है कि फलासक्ति त्याग कर लोकहित में आसक्तिरहित मन से अपने कर्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वाह करते हुए चित्त को परमात्मा के स्वरूप में समाहित करना है।

कर्म तो प्रकृति के गुणों के द्वारा किये जाते हैं उनमें जीव की कर्तापन की भावना अज्ञान का द्योतक है। कर्म के साथ जीवात्मा की जो भावना रहती है कर्म का फल उस भावना का अनुसरण करता है। इसीलिए अज्ञानी के लिए कर्म बन्धन है तथा ज्ञानी के लिए परमात्मा की सेवा एवं पूजा है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का आदेश तथा संदेश है कि –

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग: उच्यते॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्॥
कर्मजं बुद्धियुक्ता: हि फलं त्यक्त्वा मनीषिण:।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्ति अनामयम्॥

अर्थात् हे अर्जुन! कर्मफल में जो आसक्ति है उसी से कर्मबन्धन तैयार होता है, क्योंकि आसक्ति वासना का रूप है और वासना चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाती है किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखते हुए जो कर्म किया जाता है उसकी सिद्धि तथा असिद्धि का चित्त पर प्रभाव नहीं पड़ता इसी को योग कहा जाता है। अत: योग में स्थित होकर कर्म करने से चित्त शुद्ध होता है। इस बुद्धिगत योग से पाप तथा पुण्य के परिचायक कर्मों से मुक्ति मिल जाती है और सुख–दु:ख के रूप में कर्म का भुगतान नहीं करना पड़ता। यही कर्मयोग कहलाता है जिसके फलस्वरूप कर्मफल के भुगतान सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होकर ज्ञानी मनुष्य जन्म–मृत्यु के आवागमन से मुक्त होकर परमात्मा के अक्षय आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु कर्मयोग की सिद्धि के लिए क्रियायोग की आवश्यकता है, अन्यथा आध्यात्मिक मार्ग के अन्तराय तथा समाधि की अयोग्यता इस बुद्धियोग तथा कर्मयोग को सफल नहीं होने देंगे।

यह 'क्रियायोग' क्या है, इसकी परिभाषा महर्षि पतंजलि ने दिया है कि –

तपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग:।
समाधिभावनार्थ: क्लेशतनुकरणार्थश्च॥

(योगदर्शन 2/1,2)

(क्रमश:)

याद रखो

यहाँ के धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार, यश-कीर्ति आदि का कोई महत्व नहीं है। ये तो प्रारब्धवश राक्षसों तथा चोर-डाकुओं के पास भी हो सकते हैं। महत्व तो है दैवी सम्पदा के गुणों का। जीवन में उन्हीं का उपार्जन, सेवन तथा संवर्धन करते रहना चाहिए। धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार और यश-कीर्ति प्रचुर मात्रा में प्राप्त भी हो गये और जीवन आसुरी सम्पदा से भरा रहा। पापकर्म होते रहे तो इन सब पदार्थों के होने पर भी न यहाँ शान्ति-सुख मिलेगा और न परलोक में ही। वरं जिन आसुरी स्वभाव वाले मानवों को ये सब प्राप्त हैं, वे जिस घोर अशान्ति, दिन-रात के अन्तर्दाह, अत्यन्त चिन्ता का भोग करते हैं और आठों पहर काम, क्रोध, लोभ, अभिमान के वश होकर द्रोह, दम्भ, द्वेष, चोरी, ठगी, छिपी या खुली डकैती, पर-निन्दा, पर-अनिष्टसाधन, वैर, हिंसा, ध्वंस आदि मानस तथा शारीरिक पापों में लगे रहते हैं, उस पर विचार करने पर तो इस स्थिति से बुद्धिमान् पुरुष को बड़ा भय लगता है। पर नरक के कीट की भाँति दिन-रात ऐसे ही पतित जीवन के प्रवाह में पड़े हुए वे लोग इस पाप-जीवन में गौरव का अनुभव करने लगते हैं और इसको कर्तव्य मान लेते हैं। यह भविष्य को, सर्वथा दुःख संतापमय बनाने वाली बड़ी बुरी स्थिति है। आसुरी भोग-जगत् में प्रायः यही स्थिति है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 NOVEMBER 2012

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः

संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।

ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले

परामृताः परिमुच्यन्ति।

(मुण्डकोपनिषद् 3।2।6)

जिन्होंने वेदान्त शास्त्र के सम्यक् ज्ञान द्वारा उसके अर्थस्वरूप परमात्मा को भलीभाँति निश्चय पूर्वक जान लिया है तथा कर्मफल और कर्मासक्ति के त्यागरूप योग से जिनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया है, ऐसे सभी प्रयत्नशील साधक मरणकाल में शरीर का त्याग करके परब्रह्म परमात्मा के परमधाम में जाते हैं और वहाँ परम अमृत स्वरूप होकर संसार बन्धन से सदा के लिए सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14556. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा